सर्वमित्र
(पाक्षिक-पत्र)

[illegible] १९१२ ई० रविवार [illegible] १।१।३२

बलिदान पर्व

बलिदान दिवस की पुण्य तिथि पर सम्पूर्ण देश के साथ हम भी अमर कुलपति के चरणों पर अपनी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित करते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी उन महान आत्माओं में से थे जो कि देश को बड़े भाग्य से मिलती हैं। उनका वीरतापूर्ण बलिदान, उनके सुन्दर और सच्चे जीवन से कम शानदार नहीं था। उनका एक [illegible] दुष्ट मुसलमान से मारा जाना उनके बलिदान के गौरव को कम नहीं कर सकता। संसार जानता है कि उनके हृदय में दूसरे सम्प्रदाय वालों के लिये विशेषकर मुसलमानों के लिये कितना प्रेम था। उनके विचार उस संकुचित साम्प्रदायिक सीमा को सर्वथा लांघ चुके थे जो मनुष्य के अन्दर द्वेषबुद्धि पैदा कर देते हैं। उनके हृदय में प्रत्येक प्राणी के लिये प्रेम था चाहे वह मुसलमान हो या ईसाई। इसी सार्वभौम प्रेम की वेदी पर ही उन्होंने अपने जीवन का एक एक पल बिताया।

उस एकता के स्वर्णीय युग में जब कि भारतवर्ष में एक सिरे से दूसरे सिरे तक एकता की धूम मची हुई थी आप दिल्ली के बेताज बादशाह हो रहे थे। उस समय स्वयं मुसलमानों ने उनको जामा मस्जिद की पवित्र वेदी पर बिठा कर उनसे सत्य और प्रेम का सन्देश सुनाने को कहा था। यह कौन भूला होगा?

आज दलित वर्ग को गले लगाने के लिये शायद देश में बहुत मिल जांय, जब कि हिन्दुस्तान में इस बात के लिये एक जबर्दस्त लहर पैदा हो चुकी है, वह जमाना भी था जब कि लोग उनकी परछाईं से भी भाग जाते थे, यदि किसी कुलीन कहे जाने वाले मनुष्य को उसकी छाया भी छू जाती थी तो उसका पवित्र होना मुश्किल हो जाता था। उस विषम समय में उनके व्यापक और अनिर्वचनीय प्रेम ने, उनके विशाल हृदय ने, उन अछूत कहे जाने वाले भाइयों को गले लगाया था। सच मुच कवि का यह कथन 'यह उर विशाल यह कोमल तन' ऐसे ही नर रत्नों के लिये लिखा गया है। अछूतों के लिये वह धन, मान, सर्वस्व तक छोड़ देने को तैयार थे। उन्हीं के लिये

उन्हों ने कांग्रेस के यशस्वी प्लेटफार्म को विदा दी। हो सकता है इस बात को कई लोग अच्छा न भी समझते हों। परन्तु इस बात से इन्कार नहीं हो सकता कि उनके ऐसा करने का मुख्य कारण दलित सेवा की तीव्र भावना ही थी। आज के इस नाजुक वक्त पर जब कि अछूतों के लिये महात्मा जी ने अपनी ज़िन्दगी तक की बाज़ी लगा दी है - हमें स्वामी श्रद्धानन्द की याद आती है। उनकी उपस्थिति दलितों के लिये किये गये इस आन्दोलन को अतुल सहायक होती। लेकिन हम जानते हैं इस इच्छा का कोई अर्थ नहीं। अब तो यही हो सकता है कि बलिदानोत्सव के शुभ अवसर पर जनता अपना कर्तव्य समझे। स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान के नाम पर महात्मा गान्धी तथा राजगोपालाचार्य जैसे मान्य नेता दलितोद्धार के लिये, राष्ट्र से, विशेषकर हिन्दुओं से अपील करते रहे हैं। इस अपील का जनता ने कैसा स्वागत किया वह बतलाने की ज़रूरत नहीं। लेकिन इस में शक नहीं कि उनका बलिदान हिन्दू जनता से बहुत कुछ चाहता है। स्वामी जी इसी काम को करते हुए शहीद हुए और अगला जन्म भी इसी अछूतोद्धार के काम में लगा देना चाहते थे। उन्हों ने हिन्दू जाति की जड़ मज़बूत करने के लिये उसे अपने खून से सींचा था। उनकी इस बड़ी सेवा की हिन्दू जनता और राष्ट्र दोनों ही ऋणी हैं। जो जनता और राष्ट्र के लिये जिया उसी के लिये मरा उस महान व्यक्ति को क्या भारतीय भूल सकते हैं।

स्वामी जी हिन्दू संगठन के पक्षपाती थे - और शायद इसी लिये दलितोद्धार के कार्य को प्रधानता देते थे। परन्तु इस से यह समझना भ्रमपूर्ण होगा कि वह सम्प्रदायवादी थे। वह हिन्दू संगठन के साथ राष्ट्र हित का हमेशा ध्यान रखते थे। जिस कार्य में वह राष्ट्र का अहित देखते थे उसके पास भी न फटकते थे। स्वामी जी के स्वभाव से और उनके जीवन से जो कोई भी परिचित हैं वे जानते हैं कि वह हिन्दू नेता होते हुए भी विशुद्ध राष्ट्रीय नेता थे। दिल्ली में जो इतनी राष्ट्रीय जागृति और उन्नति दीखती है उसके आदि कारण वह ही थे।

प्रेम और सेवाभाव रखने वाला व्यक्ति किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र से अछूता नहीं रह सकता। सत्य और अहिंसा यदि महात्मा गान्धी को राजनीतिक क्षेत्र में घसीट कर ले जा सकते हैं, यदि धर्म भाव महामान्य मालवीय जी को राजनीति में ले जा सकते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं कि

स्वामी जी का अनुपम प्रेम उनको ऐसे काम में क्यों न डाल देता। उन्होंने प्रायः हर एक सार्वजनिक क्षेत्र में हाथ डाला और उसको खूब शान से निबाहा। उनका अन्धकार मय पूर्व दिशा से सूर्य के समान उदय हुआ और ज्यों २ वह सार्वजनिक क्षेत्र के क्षितिज से उठकर ऊपर चढ़ता गया लोगों के सामने अधिकाधिक उज्ज्वल रूप में आता गया। उनके सार्वजनिक जीवन का प्रभात काल और संध्या काल दोनों ही मनोहर और शानदार थे।

उनका सार्वभौम प्रेम बेसूद और व्यर्थ होता अगर उसके साथ उनमें अदम्य उत्साह और तत्परता न होती। उनके जीवन में इन दोनों गुणों का सम्मिलन सुवर्ण और सुगन्ध का संयोग था। इसी लिये जिस बात में वह लोक कल्याण देखते थे उसमें पूरे उत्साह से जुट जाते थे। दुनिया कोई कुछ कहती रहे। उन्होंने देश में दी जाने वाली शिक्षा में गुलामी की बदबू आयी उसको उसे हटाने के लिये कटिबद्ध होगये और शिक्षा की धारा को ही एक दम बदल डाला। इसी का परिणाम है कि जो शिक्षा पहले अंग्रेजी के माध्यम में ही प्रचलित थी वही प्रायः सब जगह हिन्दी के माध्यम में दी जाने लगी है। उनके दिल में भावना कि "सदुर्धर्म प्रचारक" पत्र उर्दू से हिन्दी में हो जाना चाहिये क्योंकि राष्ट्र को राष्ट्र भाषा की आवश्यकता है जो कि हिन्दी ही हो सकती है - झट पत्र हिन्दी में कर दिया; इस बात की परवाह नहीं की कि हिन्दी पढ़ने वाले ग्राहक कहां से आयेंगे।

शिक्षा और जो उन्होंने आश्चर्य जनक देन दी है वह गुरुकुल के रूप में है जिसको हम उनका जीवित यश कह सकते हैं। वह गुरुकुल के बाहर रहते हुए भी, उस की तरह पालन करते थे, उसकी उन्नति के उपाय सोचते थे। बलिदान से पूर्व भी उनके दिमाग में गुरुकुल के विचार चक्कर काटा करते थे। अब जब कि भौतिक देह में वह हमारे मध्य में उपस्थित नहीं हैं हमारा कर्तव्य है कि उनके यश को बनाये रक्खें। उसके लिये बड़े से बड़ा त्याग करने को भी तय्यार रहें। हम उनकी स्मृति बलिदान के स्मरण मात्र से के ही स्थिर नहीं रख सकते उसके लिये हमें उनकी शिक्षाओं पर चलना पड़ेगा। भगवान हमें शक्ति दें कि हम अपने में उनका दिव्य प्रेम पैदा करके [illegible] शिक्षण को सफल बना सकें; एवं देश और राष्ट्र के लिये हितकर सिद्ध हो सकें।

अन्त में हम फिर एक बार उस पुण्य अवसर पर श्रद्धास्पद कुलपति श्रद्धानन्द जी के चरणों पर सादर श्रद्धाञ्जलि समर्पण करते हैं।

"कुछ आपबीती."

गुरुवायूर —

महात्मा जी ने जिस प्रकार खेड़ा बारदोली और चम्पारन भारतवर्ष में विशेष महत्वपूर्ण स्थान बना दिये हैं उसी प्रकार गुरुवायूर की मन्दिर की तरफ़ भी आज सारे भारतवर्ष की आंखें लगी हुई हैं। आज से पहिले तक महात्मा जी का जीवन और मृत्यु - दूसरे शब्दों में राष्ट्र का जीवन और मृत्यु - का प्रश्न गुरुवायूर बना हुआ था। गुरुवायूर हाथ से निकला तो सब कुछ खोया और अगर गुरुवायूर जीत लिया तो सदियों का सवर्ण हिन्दुओं के पाप का गढ़ गिरा दिया। १२ सितम्बर के दिन सदियों से चले आते हिन्दुधर्म के कलंक को मिटाने के लिये एक महात्मा ने अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी थी। उसको सुनकर सारा भारतवर्ष कांप उठा और सारे देश के कोने २ में एक लहर चल गयी। यरवदा पैक्ट बना और महात्मा जी ने अपना उपवास तोड़ा, परन्तु उस समय किसी को क्या मालूम था कि इस पैक्ट के पीछे एक छोटा सा बादल है जो कुछ ही दिनों में भयङ्कर रूप धारण कर लेगा। अभी कुछ ही समय बीता था कि इस भयङ्कर उपवास की घोषणा ने फिर हलचल मचा दी। सारा देश इस तरफ़ टूट पड़ा और देश के सब नेता गुरुवायूर चल पड़े। मत ग्रहण किया गया। मत ग्राहक कमेटी बनायी गयी। ६६% मन्दिर प्रवेश के हक में रहे। १३% विरोध में और १०% उदासीन। परन्तु ज़मोरिन का आसन नहीं हिला, लोगों का ध्यान फिर यरवदा मन्दिर के पुजारी की तरफ़ खिंचा। २ जनवरी का क्या होगा। इस आशङ्का से सब व्याकुल होगये। पर परमात्मा की कृपा से इस ½ छटांक की हड्डियों का आमरण उपवास का निश्चय बदला और राष्ट्र की जान में जान आगई।

परन्तु क्या महात्मा जी के निश्चय परिवर्तन ने हमारा काम आसान कर दिया है? हमारी समझ में तो इस निश्चय परिवर्तन ने कुछ बढ़ा ही दिया है, सुधारकों के प्रयत्न में कमी आने पर महात्मा जी अपना उपवास जारी कर देंगे यह तो निश्चय ही है। अतः हमारा कर्तव्य गुरुतर हो जाता है। न केवल महात्मा जी के उपवास की दृष्टि से अपितु सदियों से चले आते हिन्दूधर्म के कलंक को हटाने की दृष्टि से भी हमारा पवित्र कर्तव्य हो जाता है कि गुरुवायूर के रूप में अवतार अस्पृश्यता को आमूल

धक्का दे दिया जाय। अस्पृश्यता की जड़ें काफ़ी खोखली हो चुकी हैं, वह अपनी सांसें गिन रही है। उस अन्तिम धक्के की आवश्यकता है फिर इसका दम उखड़ जायगा। और इसका दम निकालने का निशान गुरुवायूर को प्राप्त होगी।

[illegible]

३०-३५ भारत के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि लन्दन के शाही होटलों में ठहरे हुए, जेवी गोलमेज़ में बैठ कर और आपस में मुर्गे और बटेरों की सी लड़ाई लड़ कर हमारा अधिकतम हित सम्पादन कर रहे हैं अथवा इलाहाबाद के दरभङ्गा प्रासाद में बैठ कर देश के कोने कोने से आये विभिन्न हितों और विचारों के विश्वास और सदिच्छा से समझौता करने वाले प्रतिनिधि हमारा अधिकतम हित सम्पादन कर रहे हैं; इसका अन्तिम परिणाम तो समय ही बतायेगा। पर हमारा दिल और विश्वास अगर कुछ कह सकता है तो वह पिछले प्रतिनिधियों को ही अधिक पसन्द करता है।

हमारी पवित्र विभूति मालवीय जी के असीम धैर्य और उद्योग, मौलाना आज़ाद का अथक परिश्रम और एकता के लिये घट पराटर ने प्रयागराज पर फिर एक त्रिवेणी संगम कराया है। हिन्दुस्तान के सभी विभिन्न मतों और विचारों के प्रतिनिधि अपनी अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश कर रहे हैं कि इस बार एकता टूटने का उलझाव हम पर न आये। इसलिये दिन रात अथक परिश्रम करके श्रीयुत श्री विजयराघवाचार्य के नेतृत्व में इन लोगों ने करीब करीब सभी समस्याओं का हल कर लिया है, बंगाल की समस्या को हल करने के लिये वे कलकत्ता गये हैं। जान पड़ता है इस बार तो यह साम्प्रदायिकता का जहर अवश्य मेल एकता करनेकी सदिच्छा रूपी चाबुक से टकरा कर टूट जायगा। इससे पहले भी कई बार एकता के लिये प्रयत्न हो चुके हैं, स्वयं लोकमान्य और महात्मा जी इसके लिये एड़ी से चोटी तक ज़ोर लगा लगा कर थक चुके हैं परन्तु अभी तक पूर्ण रूपेण सफल नहीं हो पाये थे। इस बार का इलाहाबाद का एकता सम्मेलन आशा तो ऐसी ही लगती है कि सफल होकर ही रहेगा।

हम ऐसे सुन्दर और सद्भाव के अवसर राष्ट्र को बधाई देते हैं और इन प्रतिनिधियों का अभिनन्दन करते हैं और धन्यवाद करते हैं परन्तु ज़रा पर्दा उठाइये। पर्दे के पीछे वह क्या बटेरों की सी लड़ाई है? यह अजब! जेवी गोलमेज के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि मेज़ी के ज़ोर ज़ोर से ठुके

और इंग्लैंड की साख पर रही है। अब वह दिन दूर नहीं जबकि सभी साम्यवादी राष्ट्रों के साथ भारतवर्ष भी ब्रिटिश सिंह की 'पूंछ मरोड़' कर स्वाधीन राष्ट्रों की श्रेणी में आ खड़ा होगा।

स्थानीय - चक्र

विगत कुलमंत्री जी पर इस समय कुछ भी लिखना असामयिक तो अवश्य है। परन्तु जब हम यह देखते हैं कि इस बार ऐसे सार्वजनिक और महत्वपूर्ण विषय पर अभी तक किसी पत्रिका ने नहीं लिखा है, तो हम इस असमय में ही अपनी कलम उठाने को विवश होरहे हैं। यह विषय कितने सार्वजनिक महत्व का है यह किसी से छिपा नहीं है। अतः इस अवसर पे हमारे ये कुछ विचार अवश्य लाभदायक सिद्ध होसकेंगे, इसी आशा से हम लिखने बैठे हैं।

यह साल कुलमंत्रित्व की दृष्टि से बड़ी ही अजीब रहा है। इधर पिछले ५-६ सालों से एक साल में दो कुलमंत्री बनते थे। पहिले कुलमंत्री श्रीकृष्णचन्द्र जी के सत्याग्रह संग्राम में जाने के कारण द्वितीय कुलमंत्री का चुनाव करना पड़ा। प्रथम कुलमंत्री यहां उपस्थित नहीं हैं अतः उनके विषय में अधिक लिखना पिष्टपेषण करना होगा और इसीलिये हम इस पर अधिक न लिखें परन्तु एक बात कहे बगैर नहीं रहा जाता और वह है उनका त्याग पत्र। अपने त्यागपत्र के सिलसिले में कुलमंत्रीत्व पर उन्होंने कुलमंत्री बनाने से कुछ शिकायतें रखी थीं। उन शिकायतों में अंशतः तथ्य भी है वहां उनके दूसरे पहलू - विद्यार्थियों के सहयोग के अभाव की शिकायत - में बहुत कम उनके मामले में उल्लेखनीय हैं। हम यह विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि पिछले कुलमंत्रियों को जितना सहयोग मिलता रहा है उससे अधिक उन्हें मिला था। इस प्रकार इतने सहयोग के होते हुए भी त्यागपत्र देने की शिकायत तो बहुत ही [illegible] प्रकार से लोकमत का अपमान है। परन्तु जहां हम यह दोषारोप कुलमंत्री पर देते हैं वहां छात्रों को भी अपनी जिम्मेवारी को नहीं भूलना चाहिये। कुलमंत्री चुनने के बाद अक्सर हम लोग अपनी जिम्मेवारी की इति-श्री समझ लेते हैं। और यह समझ रहे होते हैं कि कुलमंत्री बनाकर हमने अमुक का अहसान किया है। [illegible] कुलमंत्री हो जाना है कि [illegible] अधिकार [illegible] इन दो [illegible] के नाते में इसकी क्या [illegible] होती है।

(इससे आगे पृ. ११ पर पढ़िये)

देख रहे थे। और इस कार्य में संसार की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अमरीका का महत्व आज दिन सर्वोपरि अग्रगण्य है। युद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों ने - दूसरे शब्दों में 'Big four' ने जर्मनी को बुरी तरह हर्जाने से लाद दिया है। जर्मनी के इस बोझ ने यूरोपियन राष्ट्रों के सामने कई बार समस्या उत्पन्न की है। उनमें से सब से नूतन समस्या लूसेन कान्फ्रेंस में हल की गई थी। परन्तु जहाँ इस कान्फ्रेंस में जर्मनी को यह रियायत दी गई थी कि उसका लिया ऋण या मित्र राष्ट्र नहीं लेंगे वहाँ आपस में ही एक चुप चुप सन्धि कर ली गयी थी कि बशर्ते कि अमेरिका अपना युद्ध ऋण जो कि यूरोपीय राष्ट्रों पर है वह पिछले साल की तरह इस बार भी स्थगित कर दे। इसके थोड़े दिनों बाद इधर अमेरिका में दृश्य बदला। हूवर को गर्दनिया दिया गया और रूजवेल्ट साहब आ विराजे। ये कनवेन साहब हूवर टोरियन के सख्त खिलाफ हैं। इस लिये अब यूरोपियन राष्ट्रों को अपना युद्ध ऋण चुकाना पड़ रहा है। इंगलैण्ड ने इस पर अमेरिका को बहुत कुछ लिखा पढ़ा परन्तु अमेरिका ने साफ अंगूठा दिखला दिया। अब इंगलैण्ड ने तो अपनी रकम अदा कर दी है पर और राष्ट्रों के सामने समस्या है। फ्रांस में तो कुछ दिन पहिले खबर आयी थी कि मि. हेरियट का युद्ध ऋण अदा करने का प्रस्ताव ही फेल हो गया है और इस लिये वे अब त्यागपत्र देना चाहते हैं। इटली आदि ने भी इन्कार कर दिया है। अभी पता नहीं आगे क्या गुल खिलते हैं।

दूसरी तरफ फारस से ब्रिटिश सिंह का दबदबा उठ रहा है। सन् १९०१ में फारस से तलवार के जोर पर यह सन्धि की गयी थी कि ६० साल तक एक इंग्लिश कम्पनी को फारस के तेल का ठेका मिलेगा। और फारस सरकार इस में हस्तक्षेप नहीं करेगी।

परन्तु अब फारस सरकार की आंखें खुलीं। उसने देखा कि यह तो सरासर हमारा गला घोंटना है और हमें निर्बल देख कर हम पर जबरदस्ती सन्धि की शर्तें लाद दी गयी थीं तो उसने उस सन्धि को मानने से साफ इनकार कर दिया। इस पर ब्रिटिश सिंह खूब गरजा परन्तु फारस सरकार ने उसकी पर्वाह नहीं की। अब ब्रिटिश सिंह ने हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में यह मामला पेश करने की धमकी दी तो फारस सरकार ने कहा कि यह उसकी विचार सीमा में ही नहीं आता। अब इस पर यह मामला अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय भेज दिया गया और अब देखना यह है कि क्या होता है।

इन दो बातों से यह सिद्ध है कि संसार से ब्रिटिश सिंह का दबदबा दूर होता जा रहा है और अन्य राष्ट्र भी अपनी सत्ता समझने लगे हैं।

अमेरिका के ऋण सम्बन्धी मामले से भी स्पष्ट है कि इस समय संसार की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अमेरिका का महत्व बहुत बढ़ रहा है।

(इसके आगे पृ… पर देखिये)

पिता का पुत्रों को आदेश

(अमर कुल मिश्र द्वारा)

"दैव्या अध्वर्यवस्त्वाच्छ्यन्तु वि च शासतु। गात्राणि पर्वशस्ते सिमा कृण्वन्तु शम्यन्ती"॥ यजु०,अ २३,४२म

अर्थ— बड़े २ उत्तम विद्वान जो आत्मा की उन्नति चाहने वाले, आत्म हनन से बचाने वाले हों तुम को उपदेश करें और दोषों को, जो कि तेरे बन्धन स्वरूप हैं काट-डालें; प्रत्येक सन्धिस्थान में गात्रों का निरीक्षण परीक्षण करें और प्रेम से बंधी हुई, दुःखस्वभावों को हटा-ती हुई माताएं भी इस प्रकार का शिक्षा करें॥

इस वेद-मंत्रोक्त आचार्य के लक्षणानुसार पूर्वकाल में आचार्य होते थे। परन्तु मैं यद्यपि वैसा आचार्य नहीं (जैसा कि आचार्य को पूर्ण विद्वान वेदज्ञ होना चाहिए) और न वैसा आचरण करने वाला हूं, जैसे उपरोक्त वेद मन्त्र से बतलाए गए हैं; तथापि मेरा कर्तव्य है। इसमें मेरा दोष नहीं क्योंकि मैं ब्रह्मचारी नहीं रहा और उस समय ब्रह्मचर्य का महत्व किसी को ज्ञात भी न था। ब्रह्मचर्याश्रम की स्थिति को लोगों ने छोड़ दिया था, अतः मुझे ब्रह्मचर्याश्रम नियमपूर्वक जैसा रखना चाहिए था वैसा मैंने नहीं रखा। किन्तु इस समय जब कि मैं ब्रह्मचर्य की अवस्था में ब्रह्मचारी न रहा तो भी ब्रह्मचर्य की आवश्यकता अनुभव करता हूं और अपने अनुभवों से यथा शक्ति दूसरों को सत्पथ पर लाने की कोशिश करता हूं।

उपदेश केवल वाणी से नहीं आचर-
ण से देना चाहिए । परन्तु मैं इस
अवस्था में नहीं हूं कि जीवन से उप-
देश दे सकूं । मुझे कई बार १४,१५ घण्टे,
तक उन्नीस २ दिन रात जाग कर काम
करना पड़ा है परन्तु यह कोई बहाना
नहीं हो सकता, क्योंकि मुझे नियम
भंग नहीं करना चाहिए थे मैं तुमसे
बनावटी (Formal) बात नहीं कर-
ता यथार्थ ही कहता हूं । मैं संसार
से छूट कर १६ वर्ष से Second Class
में नहीं बैठा था परन्तु बीमारी के का-
रण दो, तीन वर्ष से बैठना पड़ा । यह
भी किसी पाप का ही फल है इसका
असर मेरे पुत्रों पर ऐसा पड़ा कि
पहिले स्नातक (जो दूसरी संख्या पर थे)
मुझे देखकर उसी प्रकार से बैठे ।
मेरी कमजोरी है । कमजोरी का फल
भुगतना ही पड़ता है । इतनी कमजोरि-
यों के होते हुए मैं जीवन से उपदे-
श नहीं देसकता ।

मैं चाहता हूं कि तुम्हें इसी
कुल में पता लग जाए कि वीर्य
क्या पदार्थ है और शरीर से
इसके पृथक् होने से क्या हानि-
यां होती हैं ताकि तुम बाहिर
जाकर, और यहां पर भी, अपने
को तथा अन्यों को नियम पूर्वक
रहने में सहायता दे सको । मेरे
पास बाहर से ५००, ६०० ग्रेजुएट-
ट्स के पत्र आचुके हैं कि बता-
ओ कौनसा मार्ग है ? किधर
जाना है ? ऐसी २ हालत में
क्या करें ? यह ही नहीं परसों
ही एक पत्र आया है । जब
यह हालत है तब शोचनीय
अवस्था और भी भयंकर मालूम
देती है । अतः पुत्रो ! मैं तुम्हें
बताना चाहता हूं कि किस प्रकार
इन भयंकर अवस्थाओं से बच-
ना चाहिए । प्रश्नोपनिषद् में सं-
पूर्ण जीवन विद्या को दिखाया है

परिणाम ने अभीतक नहीं समझा कि chastity (ब्रह्मचर्य) क्या पदार्थ है इसी लिए स्थान २ पर डॉक्टर होते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कॉलिजों की बातें अद्भुत पैदा नहीं होने देतीं। तुम्हारे उपाध्याय भी जब कोई बात सिखाती हो तो स्कूलों कॉलिजों के उदाहरणों को सामने उन २ रहस्यों को समझाने का प्रयत्न करते हैं परन्तु इस प्रकार सत्य का कारण नहीं हो सकता।

जिस काम के ऐसे भयंकर परिणाम है, उस काम को कभी न करना चाहिये। उसके लिए प्रातः काल की प्रार्थना सर्वश्रेष्ठ है। प्रातः ही मनुष्य को दिन भर का समय विभाग बना लेना चाहिए। कितसी जीवन लक्ष्यको सामने रख कर उसके साधनों की पूर्ति के लिए अपने सारे दिन को बांट ले। इस प्रकार मनुष्य को विकार का कोई समय ही न मिलेगा। परन्तु उन्नति ही उन्नति करता जाएगा। स्वामी दयानन्द जी लिखे गए हैं कि आठ प्रकार के मैथुनों का वर्जन करना चाहिए। जिससे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन हो सके। उन्होंने लिखा है कि पांच वर्ष का लड़का लड़कियों के आश्रम और पांच वर्ष की लड़की लड़कों के आश्रम में न जावे। आजकल देश की अवस्था फिर ऐसे नियम बनाने पड़े। वास्तव में प्राचीन काल में ऐसे नियम कहां थे वहां तो गुरु का एक परिवार होता था उसमें लड़के लड़कियां सब इकट्ठे रहते थे। ग्रामों में भिक्षा मांगने जाते थे परन्तु अब वह जमाना नहीं रहा। अब तो पांच वर्ष की अवधि लगानी पड़ती है। आठ मैथुनों में पहिला मैथुन —

१ दर्शन है।

पहिले दर्शन का निषेध है जिससे अंतरङ्ग रूप में न फंसा जाये और ब्रह्मचारी अपने उच्च पद

से गिर न जावे। दर्शन के निषेध
का यह अभिप्राय नहीं कि स्त्री पर
आंख पड़ गई तो पाप होगया अथवा
वहां से दौड़ जावे। यूं तो माता
और बहिन को देखते ही हैं। चाहि-
ए यह कि स्त्री जाति में से छोटी
बड़ी कोई भी आवे तो उसमें मातृ-
शक्ति का ध्यान करके सिर झुका
आगे बढ़ जावें। दर्शन के निषेध
का यह अभिप्राय है कि अपने आ-
नन्द के लिए रूप में फंस न जाना
चाहिए। जिस वस्तु के ~~आनन्द~~ देखने मात्र से
आनन्द होता है उसको देखते ही
रहना ठीक नहीं क्योंकि इसमें तो
आदमी इन्द्रिय का गुलाम बन जाता
है। स्त्री क्या, संसार की कोई
भी प्राकृतिक वस्तु हो उसको देखना
ही उद्देश्य बनाकर देखते रहना
ठीक नहीं। उद्देश्य ऐसा बनाना
चाहिए जिससे शारीरिक मानसिक
और आत्मिक उन्नतियों में से
कोई सी भी उन्नति होती हो। वि-
द्यार्थी अवस्था में विद्यार्थी को
ज्ञान प्राप्त करना है अतः उसकी प्र-
वृत्ति होती है कि वह वस्तुओं को
देखता फिरे और उनसे ज्ञान प्राप्त करे।
परन्तु जो विद्यार्थी ज्ञान प्राप्ति के उद्दे-
श्य को भूल जाते हैं और वस्तुओं
के दर्शन मात्र के लिए इधर उधर
घूमते फिरते हैं सिवाय इसके कि वे
इन्द्रियों के गुलाम बनकर संयम को
छोड़ अपनी गिरी हुई अवस्था बना-
लें और कुछ नहीं हो सकता। वि-
द्यार्थी अवस्था को इस प्रकार खोकर
30, 32 की उमर में पहुंच पछताते
हैं — "हाय, हमने कुछ न किया
सारी पिछली उमर व्यर्थ गवां दिया"
यह 30, 32 वर्ष की अवस्था संसार
क्षेत्र में उतरने की होती है जब कि
मनुष्य निराशा में पड़कर अपना
जीवन खो बैठता है और सांसारिक
कठनाइयों से मुकाबिला नहीं कर सकता
और नहीं उन्हें जीत सकता है। अतः
दर्शन का अर्थ है कि रूप में फंसना

न चाहिए, चक्षुरिन्द्रिय को अपने वश में रखना चाहिए। सारे देशों के विद्वान एक मत होकर ज्ञानेन्द्रिय को सबसे पवित्र मानते हैं। इसीसे उत्पत्ति होती है और इसीसे आजा ए रईसा है, जिसका अर्थ है "सब से उत्तम इन्द्रियां" परन्तु इस समय इस अंश में सबसे गिरी अवस्था फ़ारसी जानने वालों की है। मुहम्मदीय जातियां और अनेक आर्य इसाईयों से भी गिरे हुए हैं। पर उन मुहम्मदियों के विद्वानों ने भी इसे पवित्र कहा है।

२ स्पर्शन

स्पर्श से मनुष्य मारा जाता है किसी के हाथ को या किसी अंग को पकड़ कर कोमल २ स्पर्श करते रहना इससे अपना नाश भी होता है और दूसरे का भी। यदि अपना नहीं भी होता तो तुम यह कैसे कह सकते हो कि दूसरे का भी नहीं होता। तो भी अंगों को पकड़ने का अभ्यास न जाने किसका नाश करे यह तुम नहीं कह सकते। जिस किसी का वीर्यनाश तुम्हारे स्पर्श से होता है उसका पाप तुम्हारे सिर है। मित्रता में मनुष्य एक दूसरे को पकड़ने का अभ्यास कर लेते हैं परन्तु यह अभ्यास बुरा है। मित्रता एक-दूसरे पर विश्वास से और एक दूसरे को ठीक रास्ते पर लेजाने में होती है। यदि तुम्हारे मित्र को अपने ही अन्दर से या अन्य किसी प्रकार से मालूम हो गया कि इस प्रकार स्पर्श से हानि होती है और वह तुम्हारी आदत छूटती न देखेगा तो वह शनैः २ तुमसे पृथक् रहना आरम्भ कर देगा। वास्तविक मित्रता टूट नहीं सकती परन्तु काम चेष्टाओं के कारण जो सामयिक झुकाव एक दूसरे पर होते हैं वे कभी स्थिर नहीं रह सकते और वे बनावटी मित्रताएं अवश्य टूटती हैं। प्रकृति की ओर से मनुष्य को प्राण शक्ति और स्त्री को रति शक्ति

मिली है। पशुओं में वीरता दृढ़ता और
धैर्यादि गुण स्वाभाविक हैं, चट्टान
की दृढ़ता के समान पुरुष को होना
चाहिए। स्त्री में दया, उदारता, को-
मलता प्रेमादि स्वाभाविक होते हैं।
जहां कहा गया है कि स्त्रियों में न
फंसे वहां स्पर्शन में भी न फंसना
चाहिए। अर्थात आनन्द के लिए
कोमल २ स्पर्श नहीं करना चाहिए।
अत एव कुश्ती के समय पहलवानों
को कहा जाता है कि जब तुम
लड़ो तो एक दूसरे को शत्रु सम-
झो। उसका यही तात्पर्य है कि
स्पर्श से दोष उत्पन्न न हो। प्रलो-
भन से बचने के लिए, उसमें न
गिरने के लिए शत्रु भाव रखना
आवश्यक है। इसी प्रकार दो ब्रह्म-
चारियों को एक साथ लेटना न
चाहिए। एक साथ लेटे हुए जो
थोड़ा २ भी स्पर्श होता रहता है
वह भी वीर्यनाश के लिए पर्या-
प्त है। बात यही है, कि यदि तुम्हें
कुछ नहीं होता तो तुम्हारे कारण
न जाने किसको क्या हो जाए।
अत ऐसा कार्य ही न करना चाहि-
ए कि जिसमें बुराई की संभावना
हो। बातचीत तो जैसे खड़े कर
हो सकती है वैसे बैठ कर भी हो-
सकती है। नेपोलियन में अपूर्व
आत्मा की दृढ़ता थी - वह ब्रह्मचारी
था। उसके विरुद्ध उसको व्यभिचारी
सिद्ध करने के लिये लाखों पुस्तक नि-
काले जाते थे। वह कहता था कि
इन मूर्खों को यह समझ नहीं
आता कि यदि मैं व्यभिचारी होता
तो इतना काम कैसे कर सकता।
जापान में जिजुत्सु की विद्या को
जानने वाले, बड़े २ पहलवानों को
रग दबाकर वश में कर लेते हैं
उन्हें मार डालते हैं। शरीर घड़ी से
भी सूक्ष्म है। यह अनुभव की बात
है, शारीरिक मर्मों के स्पर्श से
बड़े भयानक परिणाम होते हैं। क्या
बिना स्पर्श के प्रेम नहीं प्रकट होता
किसी बात को दस बार बोले तो
उसके प्रभाव से उसे ही सोचने लगता

है और फिर उसे ही करने लगता है चाहे कैसी ही निर्लज्जता की बात क्यों न हो। यूरोप के विद्वानों में से धर्मशास्त्रों के आदिशोधितों को पढ़े तो पता लगता है कि आचार मनुष्य के अन्दर ही विद्यमान है बाहर नहीं। काम को वश में करना चाहिए। इस वश से सब दोष वश में आ जाते हैं यह सब इन्द्रियों का विषय है, अन्य दोष एक २ इन्द्रिय के।

3 एकान्त सेवन

मनोवैज्ञानिक (Psychologists) कहते हैं कि हमें धर्माधर्म की कसौटी कोई नहीं पता लगती सिवाय इसके कि अन्तःकरण में उत्पन्न भय लज्जा ही हो। मानसिक या आत्मिक अर्धांग जिन्हें न हुआ हो उन्हें भय, शंका, लज्जा अवश्य होते हैं। एकान्त सेवन में दो को इकट्ठे न रहना चाहिए। एक या तीन रहने चाहिए। अधिक में मन वाणी, कर्म पर ध्यान रहता है।

४ भाषण

मनुष्य के पास इतनी बातें कहां हैं कि सदा ज्ञान की बातें करें ज्ञान की बातें थोड़े काल में समाप्त करके शेष काल समालोचना में, निन्दा प्रशंसा में मनुष्य बिताते हैं। कभी २ विषय कथा होने लगती है। इसके विरुद्ध यदि जनसम्मति की जोर हो तो विषय कथा नहीं हो सकती। ऐसे कामों में जनसम्मति बनानी चाहिए। बुरे बुरे कामों के लिए लड़ाई झगड़ों के लिए, ईर्ष्या द्वेष के लिए जनसम्मति तोड़ने की कोशिश करनी चाहिए। दो आदमियों को इकट्ठा एकान्त में इस ही लिए न होना चाहिए कि उसमें विषय कथा जारी होने की बहुत संभावना होती है। इस भाषण के व्यसन को अर्थात् निरर्थक बोलने को और बहुत बोलने को बन्द करके यदि समय को अपने उद्देश्य के साधनों की पूर्ति में लगाया जाए और मनन में लगा जाए तो अभीष्ट उन्नति हो सकती है। न-धावी लोग प्रायः कहा करते हैं कि हमें समय नहीं मिलता हम क्या

पढ़े और कौनसा समय विचार में लगाएं। यदि ब्रह्मचर्यावस्था में समय नहीं मिल सकता तो और कब मिलेगा। आलस्यादि व्यसनों को दूर कर मितभाषिता को धारण करके "सुखार्थिनो कुतो विद्या। विद्यार्थिनः कुतो सुखम॥" के सिद्धान्त को लक्ष्य में रखते हुए इस समय ज्ञान के एकत्रित करने में लगे रहना चाहिये।

५.परस्पर क्रीड़ा

देश धर्म, जाति की रक्षा की तैयारी के लिए खेले खेलने की आवश्यकता है। अतः क्रीड़ा तो अवश्य ही होनी चाहिये। परन्तु वैसी क्रीड़ाएं खेलनी चाहिएं। हाथापाई की क्रीड़ाएं नहीं खेलनी चाहिएं। परस्पर एक दूसरे के गले में हाथ डाल कर आगे बढ़ते हैं, कभी गिरते हैं कभी लेटते हैं, ऐसी क्रीड़ाएं न होनी चाहिएं। एक लेट जाए और एक उसके अंकस्थल का स्पर्श लेकर पड़ा हो ऐसी २ खेलों से घृणा होनी चाहिए। और कभी न खेलनी चाहिये। यदि कोई भाई ऐसा करे तो एक दूसरे की सहायता करके उन्नति करना भाइयों का जैसे धर्म होता है ऐसे ही तुम्हारी भी यह धर्म है कि अपने भाई को तुम ऐसा करने से रोक दो। मनुष्य को मखौलें खूब करनी चाहिएं, जिससे चित्त प्रसन्न रहे। हर समय उदासीन रहना ठीक नहीं। हास्यप्रद बातें करते हुए ध्यान रखो कि उसमें अश्लीलता न आने पावे। वही हास्यरस श्रेष्ठ है जिससे किसी को दुख न हो और जो अश्लील न हो।

६ विषय का ध्यान

पश्चात् विषय का ध्यान भी छोड़ दो

७ विषय का संग

जब विषय का ध्यान छूट जाएगा तो विषय का संग भी न रहेगा। ये आठ प्रकार के मैथुन हुए।

- 'सोच कर इस बात का आश्रय लूंगा' यह विचार ठीक नहीं। गिरते समय पहिले आश्रय लो फिर सोचना। अतः इन बातों पर अभ्यास झट से आरम्भ कर दो। एक बात मैं स्पष्ट करना चाहता हूं कि कई लोग विषय में फँसने के लिए मजबूर होजाते हैं, उसके अनुचित कारण हैं, पर अज्ञानीय कारण उपस्थित का ठीक न रहना है। उप-

स्येन्द्रिय की जैसी अवस्था रहनी चाहिए वै-
सी ही रहनी चाहिये। शौच के समय
उपस्थेन्द्रिय को धो लेना चाहिये। यदि
न धोया जाए तो वहाँ मैल जम कर
irritation पैदा करते है, और वीर्य-
नाश होता है उसी मैल से वहां सड़-
जन पैदा होती है और उस स्थान के
मांस को काट डालना पड़ता है या
वहां चीरा देकर उस स्थान को ठीक
करना पड़ता है। कईयों की उपस्थेन्द्रि-
य पर चमड़ा ऐसा ढीला सा होता है
कि वह उसके मुख को ढके रखता है
यह न रहने देना चाहिए। धीरे २ इसे
पीछे हटा देना चाहिये। इस कार्य में
बड़ी सावधानी चाहिये नहीं तो स्पर्श-
मात्र से irritation होकर वीर्य निक-
लना शुरू हो जाता है। जिनका स्वाभा-
विक हटा होता है वे पुरुष धन्य हैं।

सुगन्धित द्रव्य लगाना बिल्कुल
निषिद्ध है। लोग समझते हैं कि सु-
गन्धी लगाने से, इतर आदि पदार्थ
लगाने से दिमाग ठंडा रहता है और
मनुष्य अधिक कार्य कर सकता है।
परन्तु वस्तुतः बात इससे उल्टी है। दि-
माग़ बिल्कुल कमजोर होजाता है।
विषय कामना बढ़ती है। आज कल
तो यह सभ्यता का एक अंग बन
गया है। लोग अपने कपड़ों पर अ-
पने बालों पर अपने रुमालों पर
इतर छिड़के रखते है जिससे महक
उठती रहती है और मनुष्यों के
दिमाग कमजोर करती रहती है।
कुछ भी विचार का काम करने
से घबराहट होती है। लोग उस
सुगन्धी से मज़ा लूट कर अपने
जीवन का नाश कर लेते हैं।
आज कल के प्रवाह से सबको
बचकर रहना चाहिए। तुम्हारे एक
उपाध्याय थे उन्होंने बड़ी भूल की।
मैं जानता हूं कि कॉलिज में उनके
आचरण अच्छे थे। उन्होंने इन सु-
गन्धियों का खूब प्रयोग शुरू किया
परिणाम क्या हुआ - जुकाम हुआ
अब इसी में पड़े हैं। एक वर्ष से
उन्होंने मेरे कहने पर छोड़ा नहीं
तो होने वाली अवस्था को कौन जान-
ता है कि क्या होती। मुझे बाग़
लगाने के लिये उलाहना दिया जाता
है कि तुम तो सुगन्धि के प्रयोग
को मना करते हो फिर यह बाग़
क्यों लगा रखा है जिसमें चम्पा
चमेली आदि सुगन्धित फूलों से महक

उठती रहती है। स्वाभाविक सुगन्धी जितनी मिले बुरी नहीं। परन्तु कृत्रिम सुगन्धी हानि कारक है। बहुत सारे पुष्पों से सुगन्धी एकत्रित करके एक थोड़े से तेल में मिलाकर उसको प्रयोग में लाना जोकि उचित मात्रा से अधिक मात्रा में, जिसे मनुष्य सहन नहीं कर सकता, अन्दर आकर सिर में दर्द, जुकाम, शरीर की दुर्बलता, छाती में दर्द, अथवा विषय कामना आदि रोगों को उत्पन्न करेगी। प्रात:काल शुद्ध वायु में पुष्प वाटिका में भ्रमण कर लिया जाए तो दिल कैसा प्रसन्न होता है। आदमी फिर दिन में कार्य प्रारम्भ करने के लिए अथवा पढ़ाई लिखाई में मन लगाकर दिन को अच्छी तरह व्यतीत करने के योग्य हो जाता है। ब्रह्मचर्य तथा परमेश्वर में प्रेम की कोई हद नहीं। मानवीय कृत्रिम सुगन्धियों को छोड़कर परमेश्वर की दी हुई स्वाभाविक सुगन्धित वस्तुएं ही सेवनीय हैं वही लाभदायक हैं। जो मनुष्य कृत सुगन्धियां लगाते हैं। जब उस द्रव्य में से सुगन्ध उड़ जाती है तो उस द्रव्य के जमे रहने से महादुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है। जिससे दिल घबराते हैं और रोग उत्पन्न होते हैं।

स्वप्न दोष को रोकने के उपाय:—

१. रात्रि को हल्का, थोड़ा भोजन।

२. दिन को भी भूख से अधिक न करना चाहिए। रात्रि को कम इसलिए क्योंकि उस समय मेदा अच्छी तरह काम नहीं करता।

अमेरिका में प्रोफेसर्स, विद्यार्थीगण तथा सैनिकगण थोड़े भोजन पर ही निर्वाह करते हैं। इससे वे दिन भर में कभी आलस्य में नहीं आते। सदा चुस्त और प्रत्येक कार्य करने को तैयार रहते हैं।

3. सोते समय हाथ, पांव, मुंह धोना चाहिए। गरमियों में ठण्डे पानी से और शीतकाल में गरम पानी से।

४. सोना किस प्रकार चाहिए इस पर विशेष ध्यान दो, क्योंकि सोने का विधि के ठीक न होने से अजीर्ण हो जाता है और अजीर्ण से स्वप्न दोष होता है। कब्ज भी हो जाया करती है।

पहिले बाईं करवट ऊपर करके सो जाओ। वायु यदि नहीं निकलता तो निकल जाएगा। मेदा अच्छी तरह काम करता प्र-

ठीक होगा। पांच, छः मिनिट के बाद इससे थोड़ी देर सीधी करवट लेटो फिर तीन मिनिट के बाद बाईं करवट ऊपर करके सोजाओ। किसी करवट में लगातार कई घण्टे पड़े रहना ठीक नहीं। जब किसी करवट में थोड़ा सा भी दबाव पड़ता मालूम हो तो करवट बदल लो। सीधा सोना अच्छा नहीं। इससे स्वप्न दोष होता है। सीधा सोने से हाथ छाती पर आजाते हैं इससे मनुष्य बहुत बड़बड़ाने लगता है अतः मनुष्य को सीधा न सोना चाहिए।

भोजन के अधिक खाये जाने से irritation के द्वारा जो स्वप्नदोष होता है वह भोजन के पच जाने पर नहीं होता। यह तभी होसकता है कि भोजन थोड़ा किया जाए। इन सोने के तरीकों पर चलने से स्वप्न की बीमारी बहुत कम होती है।

यदि मेरा स्वास्थ्य अच्छा होता तो मैं तुम्हारे बीच में सोता। रात को बचपन में तुमने कई छात्रों के किडकिड़ किया करते थे, पैर सिकोड़ कर पड़े रहते थे। रात को जाग २ कर उनकी टांगे सीधी की गईं। ठीक प्रकार अभ्यास कराया गया तो ११ दिन के बाद ठीक हो जाते थे।

५. बार २ भोजन न करना चाहिए। जब दिन में जो चीज मैं खाती रहती यह ठीक नहीं। एक बार जितना उचित भोजन करना है उतना कर लिया बार २ करना ठीक नहीं।

६. जब बुरे विचार आवें तो प्राणायाम करो तब बुरे विचार न आवेंगे नाहीं स्वप्न दोष होगा। यदि अब भी स्वप्न दोष बन्द न हो तो रात्रि को दो घण्टे में पच जाने वाले भोजन को खाकर रात्रि को स्वप्नदोष के समय फवारे के नीचे बैठकर १५-से २० मिनिट तक शीतल जल से स्नान करे। तो सब विचार दूर हो-जायेंगे। हमें पुनर्जन्म का स्मरण नहीं रहता नहीं तो हमारे हृदय कांपते रहें। महर्षि दयानन्द ने भी कहा है।

३२ वर्ष हुए मेरी स्वयं यह अवस्था थी। आधा घंटा पढ़कर सिर में चक्कर आने लगते थे। बड़े २ आदमियों में बातचीत

प्रथा थी उससे कुछ मैं भी मह आत
ता आगई। अन्य दोषों से तो
मैं बचा हुआ था। लोग मेरी
जवानी पर हँसते थे। पीछे जब
मैंने शराब आदि पीनी छोड़ दी,
मसाले आदि खाने छोड़ दिए।
गुरुकुल में आने से १६ वर्ष पूर्व मैं स
ब कुछ छोड़ कर साधारण भो-
जन ग्रहण कर चुका था। तब अ-

वस्था ठीक होगई थी। तुम भी
चाहो तो तुम्हारी अवस्था भी बद
ल सकती है और तुम आत्मिक उन्न
त हो सकते हो। वीर्य रक्षा करते
हुए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करो। ११ वर्ष
के बाद सब गंदे परमाणु बदल कर शुद्ध हो
जाते हैं। अन्यथा कायरता क्रूरता
तुम आकर घेर लेती हैं। अब मुझे नि
श्चय है कि तुम ठीक होगे।

देव सोमनाथ (पिता गुरु) को - प्रणाम =२)

बड़ों की पूजा

श्री प० देवराज, बी० ए०

बड़े आदमियों का नाम लेते रह-ने का आज कल एक फैशन हो गया है। कोई छोटा आदमी किसी बड़े आदमी का जितना अधिक नाम लेवे, जोर जोर से नाम लेते रहे उतना ही अधिक श्रद्धालु, भक्त और बड़ों की पूजा करने वाला समझा जा-ता है।

बड़े आदमी का केवल नाम-लेने से छोटा आदमी कभी बड़ा नहीं बन सकता। बड़ा आदमी इसलिये कहाता है क्योंकि उसमें बड़प्पन है। जिस बात को सामान्य मनुष्य अपने जीवन में सिद्ध करना चाहते हैं, बड़ा आदमी उसकी सिद्धि के लिये प्रकाश देता है, रास्ता दिखलाता है। जो लैम्प प्रकाश नहीं देता, बुझा हुआ है या बिगड़ा हुआ है, उसकी कुछ कदर नहीं है, कदर तो उसी लैम्प की है जिससे प्रकाश निकल रहा है, उजाला होरहा है।

जो मनुष्य बड़े आदमी का नाम लेते हैं और अपने जीवन में उस बड़े आदमी का कुछ असर नहीं दिखलाते हैं, वे अपने जीवन से स्पष्ट कह रहे होते हैं कि बड़ा आदमी जिसको बड़ा कहा जाता है, उसमें इतना भी बड़प्पन नहीं है कि उसके बड़प्प-न की कुछ भी छाप उनके जीवन पर लग सके। वे अपने जीवन से सिद्ध करते हैं कि बड़े आदमी के बड़प्पन का प्रका-श उनको प्रकाशित नहीं कर सकता अत वह उनकी दृष्टि में बड़ा नहीं है।

किसी की भी पूजा करने के लिये उस जैसा होना पड़ता है। प्रतिदिन उसके भावों से अपने अन्त करण को भावित करने से, अपने अन्त करण पर उसकी ज्योति का और उसके गुणों का प्रतिबिम्ब पड़ने से मनुष्य अवश्य अपने पूज्य के अनु-रूप होजाता है।

स्वामी श्रद्धानन्द अपने दैनिक जीवन में अपने व्यावहारिक जीवन में कुछ सफल से मनुष्य थे। हृदय रोग, अफारा, खांसी, और कुर्ते में दर्द की भयङ्कर बीमारियों के रह-ते हुए भी अपने प्रत्येक काम में वीर सैनिक का भाव दिखलाते थे, इसका एक मात्र कारण यह था कि कर्तव्य कर्म के लिये

उन्होंने अपने शारीरिक कष्ट की कभी परवाह नहीं की। एक बार की बात है कि उनको असह्य दाढ़ की दर्द हुयी। इस दर्द में उन्हें बुखार भी रहा। सेवा के लिये आचार्य गुरु देव जी ने महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों की रात को बारी बान्धदी थी। तीन बजे से पांच बजे तक मेरी बारी थी। दस मिनट पहिले ही मैं उनके बंगले में पहुंच गया। पिछली बारी वाले तो मुझे आया देख चले गये। मैं चुपचाप धीरे से कुर्सी पर बैठ गया कि महात्मा जी की नींद में बाधा न होजावे। मैंने विचित्र बात देखी कि तीन का घण्टा बजते ही महात्माजी उठ बैठे। मैंने उनसे पूछा कि रात को दर्द का क्या हाल रहा? नींद आयी कि नहीं? उत्तर में उन्होंने इन शब्दों में कहा - "भाई! दर्द तो बहुत थी पर मैं तो चुपचाप पड़ा रहा। नींद भी नहीं आयी। मैं देखता था, ब्रह्मचारी आते थे, अपनी बारी पूरी करके चले जाते थे। मुझे तो आराम नहीं, अपनी तकलीफ दूसरे को क्यों दूं और कष्ट दूं। अच्छा जाओ, अब तो मैं उठ गया, तीन बजे मैं उठ ही जाया करता हूं।"

इस घटना ने प्रभाव अवश्य किया। मैंने स्पष्ट देख लिया कि बड़े आदमी और छोटे आदमी में यह अन्तर होता है। बड़ा आदमी अपने कष्ट को कुछ नहीं मानता दूसरों के कष्ट निवारण की उसे फ़िक्र रहती है। और छोटा आदमी दूसरे के कष्ट को कुछ नहीं गिनता, बस अपने ही कष्ट निवारण की चिन्ता रहती है।

स्वामी जी के अन्तःकरण की यह उज्ज्वल वृत्ति उनके सारे जीवन में चमकती दीखती है। इस वृत्ति की प्रबलता के लिये उनके दैनिक जीवन में वे दृढ़व्रती दीखते हैं। कष्ट सह कर भी व्रत का पालन करना है। कष्ट में भी व्रतपालन करने से मनुष्य मनुष्य बनता है, चमका करता है, समाज सेवक बनता है। स्वामी जी की यह उज्ज्वलवृत्ति क्या हमारे अन्तःकरणों में उजाला करेगी? क्या उनके भक्त उनके उज्ज्वल जीवन के प्रकाश से अपने आप को प्रकाशित करके सिद्ध करने का यत्न करेंगे कि वे उनके सच्चे भक्त हैं?

समाज को सुसंगठित न कर लें। भारत की स्वतन्त्रता की नौका आज इन्हीं भंवरों में अटक चुकी है। एक तरफ से सात करोड़ अछूत अपने आपको हिन्दु जात से अलग कर रहे हैं तो दूसरी तरफ मुसलमान लोग अपनी संख्या की वृद्धि में लग कर हिन्दु जात की जड़ को खोखला करना चाहते हैं। प्रतिदिन यह बात साफ होती जा रही है। लाखों रुपये और अमूल्य समय खराब करके भी लीकोबोली वाली गोल मेज परिषद् के तीनों अधिवेशन क्यों सफल नहीं हो रहे। क्या उस असफलता के लिये हम गुनहगार नहीं। अगर आज शास्त्र शास्त्र के एक अक्षर को भी न समझने वाले केवल नाम धारी ब्राह्मण अपनी जाति के अभिमान में इतने मदमाते हो कि विद्वान से विद्वान, गुणी से गुणी विजातीय मनुष्य को पशु से भी बदतर समझते हो तो क्या वजह है कि डा. अम्बेडकर की हिन्दुओं से अलग प्रतिनिधित्व मांगने की सलाह को क्यों अनुचित माना जाय? दोष हमारा है और पड़ते हैं दूसरों पर। महात्माजी ने तो अपने चिरकाल के स्वप्नों से क्रियात्मक रूप देना शुरू कर दिया है। अस्पृश्य भाइयों को हरिजन का रूप देकर उनके लिये अपना तन, मन, धन बलिदान करने की तैय्यारी की है। लोग कहते हैं कि उन्होंने ऐसा मैजिक किया है कि जो काम आर्य समाज ६० साल के अरसे में न कर सका वह उन्होंने ६ दिन के अन्दर कर दिया है। यह बात सुनने में कर्णप्रिय प्रतीत होती है। लेकिन कोई भी विचारशील मनुष्य कह सकता है कि जो आग जो आज महात्मा जी ने भड़काई है वह न भड़क सकती यदि उसके पहिले बारूद तैय्यार न मिलता। यकीन रखिये कि यह बदनसीब कठोर हिन्दु जाति अपनी आंखों के सामने एक नहीं हजारों महात्मा गांधी को भूख से तड़प कर मर जाने देती यदि उसके दिल को समाज सुधारों ने कोमल न किया होता। यदि आर्य समाज ने ६० साल तक लगातार कोशिशें न की होतीं कोई भी आन्दोलन कभी भी एक दम सफल हो ही नहीं सकता है- इतिहास इस बात का साक्षी है। एक नहीं हजारों सच्चे आर्य अछूत कहलाने वाले भाइयों को गले लगाने में प्राणों की बाजी भी दे चुके हैं। - क्या आपको जम्मू के वीर पं. धर्मवीर रामचन्द्र का इतिहास बताने की जरूरत है? जिन्होंने कि मेघों की शुद्धि के लिए अपनी आंखों के

बाजू उठवा कर, अपना जीवन दीप बुझा कर भी उफ न की। क्या आपको रोपड़ के उस वीर सोमनाथ आर्य की फिर जीवन कहानी फिर याद करानी होगी जो कि अपनी वृद्ध माता के साथ प्यासा रहकर मर गया? क्या आपको स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन सुनाना पड़ेगा? जो मरते दम तक अछूतो के आंसुओं मे खून बहाते रहे। उनकी आहो मे आह। आज यह ठीक है कि आर्य समाज अपने यौवन पर नहीं है, आज उस से जितनी आशा थी उतना कर्तव्य नहीं दिखा रहा, आज औरो को जगा कर आर्य समाज सो गया है। परन्तु जो काम इसने किया है और कर सकता है उसके लिये आर्य समाज को धन्यवाद तथा आशा के संदेश देते है

आज राजनीतिक दृष्टि से अछूतो को भले ही अधिक Seats दे दी गई हो। परन्तु इस से उन का अछूत पन दूर नहीं हुआ है। इसके विपरीत [illegible] Government के [illegible] से क्या भारत की स्वतन्त्रता के लिखे जाने वाले इतिहास मे अछूत पन का धब्बा अमिट होगया है। आज Seats लेने की दृष्टि से अनेको भाई अपने को अछूत कह कर गर्व करते है। थोड़े से राजनीतिक लोगो ने के नाम पर यदि हिन्दु जात मे इतना भारी भेद पैदा हो रहा है तो इस का दोष महात्मा गान्धी के किये गये निर्णय को न देकर हमे अपने ऊपर लेना होगा। महात्मा जी तो इस निर्णय से पूर्ण सहमत न थे। आज, सचमुच हिन्दु जाति ने अपनी कमजोरियो को छुपा इस महात्मा गांधी की आड़ मे रख कर जो निर्णय होने दिया है वह इतिहास के पृष्ठो मे काले अक्षरो मे लिखा जायेगा। यही कारण है कि फिर महात्मा जी हिन्दु जाति के सामने अपनी आहुति दे कर प्रायश्चित करने को तैयार हुए हैं।

इस महात्मा को बचाने की हिम्मत अब किस मे है? आज तीन चार मुख्य दल ही नजर आते है। सनातन धर्म सभा, मुस्लिम लीग, राष्ट्रीय महासभा दल (Congress) और आर्य समाज

इन मे से कौन इस सवाल का ज
वाब दे सकता है? इन मे से
कौन दलितो के दुखों को ठीक ठी
कों से दूर कर सकता है?

क्या सनातन धर्म सभा
के पास महात्मा के बचाने का कोई
उपाय है? यदि सनातन धर्म का
डंका बजाने वाले, शास्त्र के ज्ञान
का ठेका लेने वाले शंकराचार्य
आज भी महात्मा जी की मौत को
नज़दीक देखते हुए भी फतवे
दे रहे हो कि अछूत लोगो के
लिये मन्दिर प्रवेश सर्वथा
निषिद्ध है, "रघुपति राजा
राघव राम पतित पावन सीता
राम" के इन शब्दो को रटते हु
ए भी पतित पावन के अर्थ को न
समझ कर अपने परमात्मा की
मूर्ति को इतना नाज़ुक बना
रहे है कि जो हरिजनों की
छाया से भी अपवित्र हो स
कती है। अपनी सभा के विषयों
तथा उप विषयो मे छुआ छूत
पर ही विशेष महत्व देते तो
है तो वे महात्मा गाधी के स
वाल का जवाब हरगिज नहीं
दे सकते।

क्या मुस्लिम लीग महात्मा
को इस आफत से बचा सकती
है? नहीं कदापि भी नहीं।

जहा पर कि हसन निजाम
और आगाखा जैसे लोग रुपया
बहा कर संघठित रूप से Pan
Islamism सन्देश देना चाहते
है। हिन्दु जाति की जड खोखली
करके अपनी संख्या की वृद्धि मे
प्रयत्न शील है। जहा पर की को
कनाडा कांग्रेस के सभापति पद से
मौलाना महमद अली जैसे श
ख्स ऐसा कह सकते है कि
७ करोड अछूतो मे से ३½ करोड
मुसलमानों को दे दो और ३½
करोड अपने पास रखलो। जैसे
[illegible] है जैसे [illegible]
वहा पर ये आशा करना कि
ये महात्मा गान्धी के सवाल
का उत्तर देंगे वृथा है।

क्या कांग्रेस के पास इसका
जवाब है?

कांग्रेस के सामने इस
समय अन्य अनेक प्रश्न है।
कांग्रेस मे केवल महात्मा [illegible]

पन्थी है पर मुसलमान और सनातनी भाई भी मौजूद हैं। कांग्रेस में आज ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो जन्म से वर्ण को न मानता हो। इस दशा में कांग्रेस भी पूरी तरह महात्मा के सवाल का जवाब नहीं दे सकती है।

क्या आर्य समाज के पास इस प्रश्न का उत्तर है?

परोदा जेल से महात्मा गांधी ने स्वत आर्य समाज को संदेश दिया है कि वह इस समस्या की तरफ ध्यान दे। इस से इतना तो स्पष्ट है कि अछूतोद्धार के कार्य को आर्य समाज आम रीती से कर सकता है। आर्य समाज के प्रमुख नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अमृतसर की ३४वीं कांग्रेस में स्वागत कारिणी के प्रमुख की हैसियत से दिये भाषण में यह साफ २ कहा था कि "६ करोड़ हमारे दिल के टुकड़े हैं। इनको बिना मिलाये स्वातन्त्र्य संग्राम में विजय नहीं हो सकती है। उन्होंने कांग्रेस के प्लेटफार्म से भी ऐसे प्रस्ताव पास करवाने का यत्न किया था। स्वामी श्रद्धानन्द ने मरते समय भी परमात्मा से प्रार्थना की थी। फिर भारत में पैदा होकर शुद्धि और संगठन के बचे हुए काम को पूरा करूंगा। इसलिये यह बात विश्वास से कही जा सकती है कि आज जो समस्या हमारे सामने है उसका उत्तर स्वामी श्रद्धानन्द के पास है। मालवीय जी एक बार ग्रामों २ में गये वहां उन्होंने व्याख्यान देते हुए कहा कि शास्त्र अछूत पन को नहीं मानते। व्याख्यान सुन कर अछूतों ने कहा कि मालवीयजी आप सचमुच महात्मा हैं आप का कहना बिल्कुल सही है पर हमारे दिल के [illegible]

दर्दे दिल की दवा आपके पा-
स नहीं वह तो स्वामी श्रद्धान
न्द के पास है। थोड़े ही दिन
के बाद स्वामी जी वहाँ जाते
हैं और उनके खान पान सब
में सम्मिलित होकर उनकी शु
द्धि करके उन को अपने में
मिलाते हैं। सच्चा आनन्द तो
स्वामी श्रद्धानन्द तथा आर्य स-
माज दे सकती है। जो लोग
कर्म से वर्ण मानते हैं उनसे
बढ़ कर इस समस्या का हल
किसे हो सकता है इसका सच्चा
हल आर्य समाज के ही पास है।

महापुरुष श्रद्धानन्द

प्रो॰ पुनम्
२८

इस नवीनयुग में जगसंसार के अन्यान्य राष्ट्र राष्ट्रीयता के रंग में रंगे जा रहे थे। भारतीय राष्ट्र को भी एक राष्ट्रीयता की आवश्यकता थी। राष्ट्र के विविध विभागों में राष्ट्रीयता के मन्त्र को फूंक देने वाले वीर भी आज राष्ट्रीय हृदय आराधन करता है। उस अमर शहीद श्रद्धानन्द का जीवन संगीत राष्ट्रीयतामय था। राष्ट्रीय धर्म के महान् आचार्य स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों व आदर्शों का अनुसरण करते हुए उस ने अनुभव किया था कि देश में प्रचलित शिक्षा अधूरी है। इस में राष्ट्रीयता की गन्ध तक नहीं। उस शिक्षा का एक मात्र ध्येय तो गुलामी की परम्परा को जारी रखने के लिये उपयुक्त गुलाम हृदय शिक्षितों को तैय्यार करना ही है। उस ने नवीन शिक्षा पद्धति की स्थापना की। शिक्षा को राष्ट्रीयता के रंग में रंग दिया। वस्तुतः पूर्व प्रचलित शिक्षा में भारतीयता का अभाव था। राष्ट्रीयता की स्थापना के लिये राष्ट्रीय एकता को दृढ़ करने के लिये आवश्यक है कि राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा देश के भावी नागरिकों पर निश्चित और एक तरह के संस्कारों को डाला जावे। राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा ही भारतीय राष्ट्र के अन्दर अत्यधिक मात्रा में व्याप्त प्राचीन कहे जाने वाले आदर्शों व सिद्धान्तों के प्रति अन्ध-श्रद्धा के भावों एवं इस के विपरीत पाश्चात्य शिक्षा तथा पाश्चात्य शासन के प्रभाव से प्रभावित नवयुवकों-भावी नागरिकों की भारतीय संस्कृति सभ्यता एवं आदर्शों के प्रति घृणा तिरस्कार एवं मुग्धता के भावों को रोका जा सकता है। अमर स्वामी आदर्शवादी थे। उन के राष्ट्रीय हृदय ने भारत को शक्तिमान् बनाने के लिये शक्ति संग्रह के लिये गुरुकुल की स्थापना की थी। सारे राष्ट्र और नवीन सभ्यता के निर्माण के लिये नवीन उत्पादक शक्ति की आवश्यकता होती है। उन्हों ने उस शक्ति को, उस जीवन सन्देश को भारत में उज्जीवित किया जो शक्ति प्राचीन आर्यता के सन्देश की प्राचीन सभ्यता की पुनः प्रतिष्ठा उस सन्देश को जो अतीत होते हुए

भी जीवन और विश्व की साधना से परिपूर्ण है। उन्हों ने देश की वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखते हुए पाश्चात्य और पौर्वात्य के उचित संमिश्रण का उच्चतम आदर्श अपने जीवन में कार्यरूप में परिणत कर दिया था। उन्हों ने यह सिद्ध कर दिया कि यदि देश के नवयुवक स्वतन्त्रता के पवित्र वायुमण्डल में विचरना चाहते हैं तो उनको आधुनिक विज्ञान और प्राचीन भारतीय आदर्शों के उत्तम संदेश को एक साथ ग्रहण कर उन को अपनाना चाहिये। वस्तुतः हमारे अन्ध-श्रद्धा के धूंए ने स्वावलम्बन की आत्म ज्योति प्रकाशिनी बुद्धि के दीपक को प्राय: बुझा दिया है और हमारी आंखें भी दुर्बल हो गई हैं। हमारे ज्ञान निधियों ने सब सद्ज्ञानों पर धूलि जम जाने दी है अथवा स्वयं जमा दी है। इसलिये यदि हमारी और आंखें हमारी होती हुई भी, उन की धूल पोंछने के लिये उन का अर्थ समझने के लिये उपस्कर लालटेन तथा उपनेत्र हमको पश्चिम से लेना पड़ता है। पर यह याद रखना कि दीपक और उपनेत्र द्वारा अपनी पुस्तक पढ़ो और अपने ही नेत्र काम में लाओ। नवांकुर पूर्ण की कोई नयी विलक्षणी। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम की शक्तियों का परस्पर मेल होने से उत्कृष्ट सभ्यता का उद्गम एवं प्रसार होगा। जिस राष्ट्र में भेद बुद्धि का रोग अंग २ में व्याप्त हो गया हो जो असंख्य जातियों उपजातियों के विभिन्न धर्माभिमानों के तिरस्कार कोलाहल और कलह से क्षीण हो गया उस का पुनरुद्धार अंग २ में अभेद बुद्धि का प्रचार किये बिना नहीं हो सकता है। हिन्दु जाति ने अपने एक बड़े हिस्से को अपने अंध अहंकार का शिकार बना कर अपने से बिल्कुल पृथक् कर दिया है। मनुष्य समाज में समानता भ्रातृत्व एवं स्वतन्त्रता के आदर्शों को कायम रखने के बजाय जब हम समाज के भिन्न २ अंगों में भेद बुद्धि को प्रबल कर देते हैं समाज के कुछ लोगों को नीच कह कर पुकारते हैं। तभी हमें समाज में अवनति का घुन लगा नज़र आता है। आज हिन्दुस्थान में अछूत कहे जाने वाले लोगों का एक ऐसा दल है जिस की संख्या तो अधिक है पर वे भी का इस भूल में उन्हें मनुष्य बनने का अधिकार नहीं। देश की सम्पत्ति के उपार्जन में वे प्रति पालित होते हैं सब से अधिक उन्हीं का श्रम होता है। पर सब से अधिक उन्हीं का अपमान होता है। बल २ पर वे ठुकराये

जीवन यात्रा के लिये जितनी सुवि-
धायें हैं उन सब से वञ्चित रहते हैं।
के सभ्यता की दीवार है। इन लो-
गों को सब कोई दबाता फिरता है
और उन विचारों के ऊपर तेल ब-
राबर रहता है। राष्ट्र की सच्ची उन्न-
ति के ऊपर यह भार अत्याचार पद
है। जब तक हम अपने ही देश भा-
इयों को, अपने राष्ट्र के एक हिस्से
को परतन्त्र बना कर रखते हैं, उन-
को मनुष्य के स्वाभाविक अधिकारों
सुविधाओं एवं मौकों से वञ्चित
रखते हैं तो हमारा क्या अधिकार
है कि हम स्वतन्त्र होने का दम भरें।
श्री स्वामी जी इस बात को अच्छी
तरह समझते थे कि जब तक हिन्दु-
ओं में से अछूतपन के कलङ्क को
नहीं मिटाया जा सकेगा। हिन्दुओं
का संगठन व सार असम्भव है-
और जिसके बिना राष्ट्रीय उन्नति
भी असम्भव है। वे इस बात को-
अच्छी तरह समझते थे कि यदि-
यही अवस्था रही तो एक दिन
आवेगा जब कि अछूत कहे जाने
वाले लोग अपने को हिन्दू जाति
से अलग कहने लग जायेंगे
और हिन्दुस्तान में एक नयी
जाति बन जायेगी। अतः
एव उन्होंने अपने जीवन का
पिछला समय इन्हीं अछूतों
के उद्धार में बिताया।

आज जब संसार के
सर्वश्रेष्ठ महापुरुष महा-
त्मा गान्धी के नेतृत्व में
देश में से अछूतपन के
कलंक को सर्वथा धो डालने
का प्रयत्न हो रहा है, आइये
हम सब मन्यु उस राष्ट्रीय धर्म
शहीद श्रद्धानन्द के पुण्य जन्म
को याद करें और उनके
दिखाये रास्ते पर चलकर
उन बीसों विपत्तियों और जन
को भारतवर्ष हिन्दुस्तान में से
अछूतपने के चिरकालीन
और अप्राकृतिक व्याधि क-
को दूर करने के काम में अग्रसर

संन्यासी का राज्य

गंगा की पवित्र धार से परिवेष्टित और हिमाचल की गोद में चैन से पड़े हुए पुनीत गुरुकुल को देखने एक बार भारत के वायसराय आये।

हमारे कुलपिता ने आगे बढ़ कर अपने अतिथि का स्वागत किया।

x x x

शाम का समय था। कुलपिता अपने माननीय अतिथि को गुरुकुल दिखा रहे थे, इसी बीच वे कार्यालय के सम्मुख टंगे हुए भारत के नक्शे के समीप पहुंच गये।

कुलपिता नक्शे पर एक जगह इशारा करते हुए बोले—: "आपकी राजधानी 'यह' ही है।"

वह हंस पड़ा और चारों तरफ इशारा करते हुए बोला—: "और, आपकी राजधानी यह सारी है।"

x x x

प्रकृति ने भी हंस कर समर्थन किया — पास के आम के वृक्ष का एक पत्ता झकझोरे हिल उठा मानो वह भी यही कह रहा हो कि—: "निर्मोही संन्यासी का राज्य असीमित है।"

— श्री विनोभाव

श्री भीमसेन पैं ११

विश्वास का रूप।

आज प्रातः स्मरणीय कुलपिता के प्रति अपने हृदयोद्गार प्रगट करना प्रत्येक कुलवासी का महान कर्तव्य है "अवश्यमेव प्रभवेत् ... वाक्यविशेषा मतिः" कालिदास के इस कथन के अनुसार कौन उस विशालमूर्ति के गुणों को इस तुच्छ सी लेखनी में सीमा-बद्ध कर सकता है तथापि "श्रद्धादिवस" के दिन अपने कुलपिता के श्री चरण कमलों में श्रद्धा-उपहार हैं अथवा अतिथि सम्मान कर कुछ शब्द उद्धृत लिखूंगा —

श्री स्वा० दयानन्द के उपदेशों से प्रभावित होकर नानकचन्द घर में आते हैं और अपने इकलौते पुत्र मुन्शीराम को सम्बोधन करके कहते हैं कि "बेटा आज यह कोई दयानन्द नामक स्वामी आया हुआ है जो हमारी सनातन की प्रचलित प्रथाओं को अन्धविश्वास और ढोंग बतलाकर खण्डित करता है। मूर्ति पर विश्वास रखने को केवल ब्राह्मणों का पेट भरना बतलाता है। जो उनसे बातचीत करता है वह उनसे प्रभावित होकर उन्हीं के सिद्धान्त को स्वीकार किए बिना नहीं रह सकता।" पिता की बातें सुनकर बेटे को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन स्वामी के दर्शनों की उत्सुकता हुई। मुन्शीराम पिता जी से कहता है तो मैं भी आज उनके दर्शन करने जाऊंगा और देखूंगा कि कैसी युक्तियों का वे किस प्रकार खण्डन करते हैं। यह सब बातें सोच कर वह घर से चला। परन्तु जादूगर की जादूगरी पर विश्वास क्या कम चलता है? बड़े २ हठधर्मी भी उसके सामने ढीले पड़ जाते हैं। अब क्या था आर्षि के दर्शन में आकर जो कुछ सोच कर चला था वह क्रियात्मक रूप में न आ सका। उसे क्या पता था कि जिस पर मैं वार करने चला हूँ उसका आर्ष भार भी मुझे उठाना पड़ेगा। जादूगर दयानन्द ने कोई ऐसी अमोघ शक्ति छोड़ी जिसके द्वारा से मुन्शीराम के हृदय के किवाड़ खुल गए। जाते समय मुन्शीराम जितने बुरे विचारों को लेकर चले थे लौटते समय उतने ही भले विचारों को लेकर घर में प्रवेश किया।

अब क्या था दिन प्रतिदिन आप की आर्यसमाज के प्रति श्रद्धा बढ़ती गई। शीघ्र ही आप जालन्धर आर्यसमाज के प्रतिनिधि होकर आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के सम्मिलित हुए। तात्कालीन स्कूलों और कालिजों की बुराइयों को देखकर आप से न रहा गया। गुरुकुल का प्रस्ताव आर्यप्रतिनिधि सभा में रक्खा। कहां वर्तमान युग और कहां गुरुकुल

का स्वप्न। परन्तु आपके विचार में जब तक दयानन्द का मिशन पूर्ण हो सकता था तो वह गुरुकुल ही था और पूर्ण निश्चय कर लिया कि अब गुरुकुल खोल के ही रहूँगा। बस जोश, काम शुरू किया, आपत्तियाँ आईं मुसीबतें झेलीं पर वे सब कुछ कृतप्रतिज्ञ के लिए चट्टान पर टकराकर खण्ड खण्ड छिन्न भिन्न हो जाने वाली तरङ्गमालाओं के समान था। जब तक प्रण पूरा नहीं हुआ तब तक न भोजन भला, न नींद। दिन भर यही चिन्ता दिल में रहती थी कि किस प्रकार अपने काम में सफल हूँ। कभी कभी जोश में आकर मनुष्य बड़े बड़े संकल्प कर लेता है परन्तु वे संकल्प जितने वेग से उत्तेजित होते हैं उतने ही वेग से और उतनी ही प्रतिक्रिया से समुद्र तरङ्ग की भाँति बैठ जाते हैं। "उत्थाय हृदि लीयन्ते मनुष्याणां मनोरथाः"। परन्तु स्वामी श्रद्धानन्द वायु की झकोरों से छिन्नभिन्न होने वाला मेघ न था। गुरुकुल के लिए 30000) आप प्रतिनिधि सभा को दिये। परन्तु इस से क्या बन सकता था प्रतिज्ञा की कि जब तक 30000) इकट्ठा न कर लूँगा तब तक घर में पैर न रक्खूँगा। स्वा. श्रद्धानन्द जैसे साधुओं के लिए यह अपना इस युग में इकट्ठा करना जहाँ हाथ का खेल है परन्तु इस युग में जब देश में लोग दुर्भिक्ष से पीड़ित हो रहे थे और फिर भी इस युग में जब गुरुकुल के स्वप्न लेना पागलपन समझा जाता था काल को रुपया इस काम के लिए इकट्ठा करना एक बड़ी वीरता का काम था। परन्तु कृतप्रतिज्ञ के लिए क्या कठिन है? उस के लिए तो "अङ्गन वेदी वसुधा, कुल्या जलधिः, स्थली च पातालम्। वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य"। आठ मास में ही 30000 रुपया इकट्ठा होगया। अब भला व्याघ्र सिंह और हाथियों से घिरे हुए भयावह जङ्गल में रहने के लिए कौन अपने प्राणों को समर्पित करता? जहां गए वहां फटकार सुनी, परन्तु श्रद्धानन्द के धैर्य को चकना चूर करने के लिए यह सब ~~कुछ~~ पर्याप्त न था। "न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः" इस वाक्य को हृदय के ~~[illegible]~~ अन्दर दृढ़ करके वह निरन्तर अटूट उत्साह से काम में जुटे रहे। 2 मार्च 1902 को नीलगिरी और नीलधारा के बीच अपने विद्यालय को शुरू किया। ऐसे भयावह जङ्गल में छोटे 2 बच्चों की अपने ऊपर जिम्मेवारी लेकर ~~[illegible]~~ वे किस प्रकार चैन से रह सकते थे। 'किसी दिन जन्तु के कारण यदि एक भी दुर्घटना होगई तो सब प्रयत्न मटियामेट हो जायगा' इस सोच कर रात को

भी अब सब कुम्भकर्णी नींद में सो रहे होते थे आप कई बार रुक्क लेकर और डंडा लेकर चक्कर लगाते दिखते थे। आप हमेशा इस चिन्ता में रहते थे कि किसी भी प्रकार इस गुरुकुल पर कोई भी कलङ्क न आने पावे। यद्यपि आपने 1916 में संन्यास लेकर इस कुल से बाह्य विदाई ली पर आपका हृदय सदा यहां के चक्कर काटता था। 1919 में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और आप भी अमृतसर में थे कि आपको गुरुकुल के सभासदों की तरफ से प्रार्थना हुई कि आप गुरुकुल को संभालें। यद्यपि राष्ट्र की बेड़ियों ने स्वामी जी को अच्छी तरह जकड़ा हुआ था परन्तु गुरुकुल के प्रेम के आगे वह सब कच्चे धागों के समान थीं। गुरुकुल, स्वामी जी के सामाजिक नैतिक तथा धार्मिक आदर्शों का केन्द्र था। हृदय के प्रिय सब आदर्शों को आप गुरुकुल में परिणत करना चाहते थे। जब गुरुकुल की रक्षा के नाम पर आप को बुलाया गया तो आप समाज सेवा के बाह्य बन्धनों को तोड़कर गुरुकुल में चले गए। गुरुकुल के प्रति स्वामी जी को कितना प्रेम था इसके लिए यह और कौन सा सुस्पष्ट उदाहरण रक्खा जा सकता है।

आपने केवल धार्मिक-सीमाबद्ध हो कर ही काम नहीं किया अपितु देश के प्रत्येक पहलू में आपने पूरा भाग लिया। जिस प्रकार आर्य समाज का बच्चा 2 आपके उपकारों नहीं भूल सकता उसी प्रकार प्रत्येक देशवासी के हृदय पर भी आपका शुभ नाम तब तक अङ्कित रहेगा जब तक सूर्य और चान्द उदित और अस्त होते हैं। राजनैतिक क्षेत्र में इस उत्साही व्यक्ति के उतरने पर वाइसराय भी कांप गया कि गान्धी के साथ हाथ जोड़कर पता नहीं क्या 2 कर उठे। 1919 में लार्ड चैम्सफोर्ड ने भारत सचिव माण्टेगू को एक पारिभाषिक तार लिखा जिसका अनुवाद निम्न है:—

"आन्दोलन खूब चल रहा है। महात्मा मुन्शीराम ने, जिसने अब स्वामी श्रद्धानन्द नाम रख लिया है, गान्धी के साथ हाथ जोड़ लिए हैं, बहुत काल तक यह प्रसिद्ध धार्मिक नेता रहा है और सामाजिक सुधार में भी उसने बहुत काम कर दिखाए हैं अब मालूम होता है कि वह राजनैतिक आन्दोलन में भी मशहूर होना चाहता है। अभी देखना है कि उसमें साहस क

तारा

इस अनन्त नभ अन्तरिक्ष के अपलक पथिक, उज्ज्वल तारे !
दूर खड़े क्यों झिलमिल झलक दिखाते हो प्यारे !
तुम्हें निहार निहार एकटक हारीं हा अँखियाँ मेरी
आओ नभ से उतर हे सखे पल भर अब न करो देरी ॥१॥

इसी ध्यान में तुम्हें देखते हुये, मुझे युग बीत गये
पर हे प्रकट-रहस्य बने हो तुम अधिकाधिक नवीन ये।
छल गये क्या वह शैशव की मधुर मधुर स्मृति घड़ी
भाव भरी जब दृष्टि हमारी आपस में थी प्रथम पड़ी ॥२॥

तुम सहृदया के सुखद अंक मेरे लिये मचलते थे,
मैं था जननी की गोदी में दोनों हृदय उछलते थे।
मैं चुपचाप पड़ा कितनी ही बातें तुमसे करता था
और तुम्हारा वह मुसकाना मुझे मोद से भरता था ॥३॥

ज्यों ज्यों उन सुखमय बातों के संग में दिन काफूर हुये
त्यों त्यों किसी शक्ति से खिंच कर हम भी इतनी दूर हुये।
खड़ा हमारे बीच आज तो विपुल अन्तरों का संसार
क्या हम सचमुच बदल गये हैं, अथवा यह भ्रम है निस्सार ॥४॥

तुम्हें देख कर आज अचानक एक हृदय वीणा का तार
झनक उठा उत्कण्ठित सा हो करने लगा मधुर झंकार।
इसी लिये इस शान्त प्रान्त में आ बैठा हूँ मैं इस रात
छोड़ छाड़ सब झंझट झगड़े तुम से करने को दो बात ॥५॥

तुम क्या हो, क्यों जाग जाग कर सारी रात बिताते हो
घूम रहे किसकी पूजा में; किसकी राह दिखाते हो।
क्यों आते हो, क्यों जाते हो, क्यों जा कर फिर आते हो
किससे खेलो आँख मिचौनी, रूठा कौन-मनाते हो ॥६॥

फूल उठी नन्दन में सुरतरु, खिले हो क्या उसके फूल
फैल रहे या धवल फेन हो सुन्दर सुरसरिता के कूल
किसी विरहिणी की नयनों के झरते आँसू हो अनमोल
पुण्य-विधाता की लिपि के या अंगार हो तुम गोल मटोल ॥७॥

छिप धुएं शतरञ्ज खेलतीं उनकी गोद रुपहरी हो
स्वर्ग गये पुण्यात्माओं की अपना दिव्य कचहरी हो।
रची शची ने चारु आरती, उसकी दीपक ज्वाला हो
किसी प्रेमिका की या गूँथी अमल मालती माला हो ॥८॥
सुभग यामिनी रूप कामिनी की नयनों के ज्योति हो
अमर पुरी की चारु चांदनी की झालर के मोती हो।
जगमग करते, प्रकृति नटी के कानों के हो क्या कर्णफूल
चरखा कात रही बुढ़िया की बिखर गई अथवा हो तूल ॥९॥
कुछ भी हो तुम मेरे आगे चमको इसी तरह हर रात
मैं न चाहता भेद तुम्हारा, मेरे लिये रहो अज्ञात।
या, यदि तुम भी मुझ जैसे ही किसी लोक के नटखट बाल
तब तो आओ घुल मिल जावें खेलें हौवी या फुटबाल ॥१०॥
ऐसा कहते हो साथ खेलने से तो नहीं तुम्हें इन्कार
भोग रोग से भरी भूमि पर आना है पर अस्वीकार।
कहाँ तुम्हारा घृणित लोक है पाप ताप परिपूर्ण असार
कहाँ हमारा दिव्य देश है पुण्य शान्ति सुख का आगार ॥११॥
जरा मृत्यु, भय दुःख नहीं हैं नहीं शोक की छाया है
नहीं द्वेष का लेश, क्लेश मय जहाँ न नश्वर काया है
उस प्रकाश मय अमर लोक में करते हैं हम सदा विहार
क्यों पृथिवी पर उतर उठावें विपदाओं का भारी भार ॥१२॥
पर देसी घर परदेसी हैं मैं गोरा तुम हो काले
आपस में ही तुमने कितने ऐसे भेद बना डाले।
मुझे बुला कर दूर देश ले दुर्गति ही करवाओगे
आपस में मिल नहीं खेलते कैसे मुझे खिलाओगे ॥१३॥
क्षमा करो, बस दूर दूर ही रहें, इसी में है आनन्द
मैं खुश होऊं तुम्हें देख कर, रचा करो तुम मुझ पर छन्द।
क्षुद्र देश के बन्धन में बंध विपुल हृदय होते हैं क्षुद्र
सीमित हो जाते हैं किंचित चित्त कलंक में व्योम समुद्र ॥१४॥
खूब खूब! उस सुन्दर भाषण पर तो तुम्हें बधाई है
किन्तु अरे यही बात तुम्हारी मुझको समझ न आई है।
कुछ भी अच्छा बुरा नहीं; ये भेद भावना लाती है
द्रष्टा की अपनी ही प्रतिमा दर्पण में खिंच जाती है ॥१५॥
जहाँ पराजय के पीछे जय, प्रणय कलह के पीछे मेल
जहाँ मृत्यु के पीछे जीवन, जहाँ ~~मरण~~ के पीछे खेल।
जहाँ निराशा में आशा है, दुख में सुख है छिपा महान
अन्धकार में भी प्रकाश है, छिपी आँसुओं में मुसकान ॥१६॥

प्रभु की देख विभूति एक भी दिनकर जहाँ लजाता है
लाखों देख कर चार चाँद, यह चाँद जहाँ छिप जाता है।
प्रभु की सर्वोत्तम कृति मानव गिन कर जिसको कौन समझ
गिरता पड़ता चढ़ जाता है रहा जहाँ पूर्णता को कर लक्ष्य ॥१६॥

गिर कर चलना जहाँ सीखते, बच्चे करते हैं अभिमान
भय को गले लगा लेते हैं उच्चाकांक्षी जहाँ जवान।
पाकर कठिन परिश्रम का फल छूटे करते हैं विश्राम
मर्त्य लोक यह कर्म भूमि है, स्रष्टा की रचना अभिराम ॥१८

परिवर्तन है जहाँ सदा ही, सब कुछ है अस्थिर जहाँ,
दोषों में गुण भरा हुआ है काँटों में हैं फूल जहाँ।
जहाँ दुःख के बाद सुखि है तिरस्कार के पीछे मान
नित्यतृप्त! हो तुम्हें यहाँ के वैभव का कैसे अनुमान ॥१९॥

जीवन का संघर्ष नहीं है, जहाँ जीत या हार नहीं
कोई भी कर्तव्य नहीं है तथा जहाँ अधिकार नहीं।
अपनी सत्ता जहाँ न रहती, जड़ चेतन हैं एक समान
ऐसे हैं अपवर्ग स्वर्ग, तो कैसा होगा सखे श्मशान ॥२०॥

रण क्षेत्र में आगे बढ़ते सैनिक के मन में उत्साह
कैसा लहराता है, कवि का हृदय न पाता उसकी थाह।
किन्तु विजय के पीछे सारा उड़ जाता है वह आनन्द
रह जाते हैं बस पीछे तो व्रण थकान या करुणा क्रन्द ॥२१॥

इसी समय सहसा नभ मण्डल हुआ प्रकाशित सूर्य समान
आँखें झपक गईं क्षण भर को दूर गया तब मेरा ध्यान।
तारा टूटा तारा टूटा - मचा दिया बच्चों ने शोर
पता नहीं मैं रहा देखता कितनी देर खड़ा उस ओर ॥२२॥

श्री पं. वागीश्वर जी विद्यालंकार

मन अमलिन मम तन बल मय हो
मां मेरी करनी से तेरा
मुख उज्वल हो, पुलकित मय हो ॥१॥

जीवन के इस लघु प्रवाह में
लहर न हो, संयम हो, बल हो।
हो उमङ्ग, उल्लास, हर्ष, पर हलचल में पड़कर
न विचल हो।
तेरे ही पद की सेवा के सागर में मिल
इसका लय हो ॥२॥

भीतर का आलोक जगा दे
बाहर के इस अन्धकार को
दम्भ द्वेष दब जाँय, सकूं मैं अपना
पावन विश्व-प्यार को।
मेरे अहङ्कार के हनन से, मां तेरे
गौरव की जय हो ॥३॥

श्री "उन्मुख"

प्रकीर्ण

राष्ट्रीय भावना और

वर्तमान युग की संसार को जो देन है उसमें राष्ट्रीय भावना का बहुत ऊँचा स्थान है। राष्ट्रीयता का जन्म १८०० शताब्दि के बीच में हुआ था। इससे पूर्व हमें किसी भी देश में राष्ट्रीय भावना नहीं दिखाई देती थी। १८०० शताब्दि से पूर्व जितने संग्राम हुए हैं वे सब भिन्न राष्ट्रों में नहीं हुए परन्तु भिन्न धर्मों या भिन्न जातियों में हुए हैं। राष्ट्रों की उत्पत्ति तो राष्ट्रीय भावना के ही साथ हुई है।

मनुष्य जाति जब जब की अवस्था में थी, तब उसके विचारों का केन्द्र जाति थी। जाति के हित को देख कर और अहित कर वस्तुओं को मनुष्य अच्छा और बुरा समझता था। [illegible] ने इसे Tribal Self के नाम से पुकारा है। परन्तु अब मनुष्य का Tribal Self नहीं रहा, अपितु National Self बन गया है। मनुष्य सदसद् का विचार जाति के हिताहित को मद्दे नजर नहीं रख सकता, परन्तु राष्ट्र के हिताहित को।

मैकीस ने जाति और राष्ट्र में भेद नहीं किया। उसने राष्ट्र का लक्षण करते हुए कहा है कि समान देश में रहने वाली जाति को ही राष्ट्र कहा है। परन्तु न तो राजनीति शास्त्र में और नहीं साधारण व-

बहार से जाते और राष्ट्र को एक
माना जाता है। प्रैडिअर फॉड्रिरी
और कोतव ने भी राष्ट्र को केवल
जाति माना है। जाति से उनका
अभिप्राय उस जन समूह से है कि
सको एक भाषा है, एक साहि
त्य है, एक रीति रिवाज है और
धर्म भी एक है। इस मत से इ
तना तो स्पष्ट हो जाता है कि
राष्ट्रीय भावना को उत्पन्न करने
के लिए जाति का एक होना
आवश्यक है। परन्तु जाति का एक
होना राष्ट्रीयता का एक मात्र का-
रण नहीं है। राष्ट्रीय भावना का
सम्बन्ध साहित्यिक या सभ्यता स-
म्बन्धि एकता से नहीं, अपितु रा-
जनैतिक दृष्टि से एकता से है। रा-
जनैतिक एकता भिन्न भिन्न जातियों
भिन्न भिन्न भाषा भाषियो और भि-
न्न धर्मावलम्बियो में भी हो स
कती है।

राजनैतिक विद्वान प्रायः उ-
नको ही समाज कहते हैं जो एक
जाति के हों। यह ठीक है कि - एक
भाषा बोलते हो और एक देश में
रहते हों। भाषा ही एक ऐसा साध-
न है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने मनो-
भावो को दूसरे के प्रति अभि
व्यक्त कर सकता है। भाषा
ही एक ऐसा साधन है जो
व्यक्तियों के सम्मुख एक आद
र्श को उपस्थित करता है।
आज पहाड़ और समुद्र मनु
ष्यो को एक दूसरे से अलग
न कर सकने में इतने बा
धक नहीं जितना कि भाषा
का भेदभाव बाधक है। अमे
रिका में एक व्यापारिक संघ
का नाश इस लिए हुआ, उस
के सदस्य एक दूसरे की भाषा
को न समझ सकते थे।

भाषा का एक हो
ना राष्ट्रीय एकता का बहुत
बड़ा कारण है, परन्तु एक
मात्र कारण नहीं। यदि भा
षा का एक होना एक मा
त्र कारण होता तो आज स्वि
ट्जरलैण्ड एक राष्ट्र न होता
क्योंकि वहां फ्रेन्च, जर्मन
इटालियन ये तीन जातियां
रहती हैं, और इन जातियों
की भाषा भी भिन्न भिन्न
है। इसी तरह रूस भी एक

राष्ट्र न होता, क्योंकि रूस में १२० भिन्न भिन्न छोटी जातियां रहती है। वहां भाषाएं भी अनेक है। ६२ भाषाओं में वहां प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। ५२ भाषाओं वहां समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं। और इसके अतिरिक्त रूस में आज राष्ट्रीय भावना को जागृत होता हुए दिखाई देती है, क्योंकि पं-जाब में कोई दुर्घटना होती उसके साथ सामान्य प्रदेश को सहानुभूति होती है, उतनी ही बंगाली और मद्रासी भी सहानुभूति प्रगट करते है। यदि भाषा का एक होना ही राष्ट्रीयता का एक मात्र कारण होता तो आज भारत में भी हमें राष्ट्रीयता न दिखाई देती, क्योंकि भारत में इस समय २२० भाषाएं बोली जाती है। इस प्रकार आज इंगलैण्ड और अमेरिका एक राष्ट्र होता, क्योंकि दोनों की एक भाषा है। इतिहास और राजनीतिशास्त्र हमें इस बात साक्षी दे रहे हैं कि भाषा का एक होना राष्ट्रीयता के लिये कोई आवश्यक कारण नहीं है। परन्तु हां, राष्ट्रीय एकता को उत्पन्न करने में सहायक अवश्य है।

भूल से सुधार

आशा भाटिया

पिता जी अपने पुत्र को देख कर कहने लगे - बेटा ! अब तो तुम अच्छे स्वस्थ मालूम होते हो।

पुत्र - जी हाँ ! अब शरीर में कुछ अधिक चेतनता और स्फूर्ति है और मैंने अब तपस्वी जीवन फिर प्रारम्भ करने की ठानी है। तपस्या से चेतनता और स्फूर्ति अधिक जाग्रत होगी। मैं अधिक स्वस्थ हो जाऊँगा।

साधारण बुद्धि का ढलती उमर का पिता अपने लड़के की बातें सुनकर अचम्भे में रह गया और घबराया। मनमें कहने लगा - इसकी अकल मारी गई है। न जाने कौन इसे ऐसी पट्टी पढ़ा देता है, मैं तो इसे किसी लंगोटी धारी के पास जाने नहीं देता। पिता को क्या मालूम था कि उस की टेबल पर पड़ा 'The Indian Naturopath' का एक पुराना अंक उस लड़के के हाथ में लग गया था जो अलमारी साफ करने के बाद भूल से टेबल पर ही पड़ा रह गया था और जिसमें एक लेख था "Out door living at morning and evening." जिस लेख ने उसके जीवन के रुख को बदल दिया। बालक के मन में अपने स्वास्थ्य के मार्ग को ढूँढ निकालने की प्रबल इच्छा थी। उसे शर्म आती थी जब उसे उसके पुराने स्वास्थ्य की याद दिलाई जाती थी और पूछा जाता था कि अब तुम्हें क्या हो गया? वह छिपता था और अपने मित्रों के सामने आने से भी हिचकिचाता था। परन्तु चूँकि संसार में 'मनुष्य' के प्रबल विचार ही उसके जीवन का रास्ता खोलते हैं। अतः पिता से वह जब भूल से छूट भी गया, लड़के को मिल भी गया और उसने स्वास्त

में फुर्ती से चढ़ भी जाता। निडल पास कर चुका था, जलता विद्यार्थी था कुछ फुर्ती से चढ़ क्यों न जाता।

पिता ने लड़के की हालत देख कर प्राकृत इसका के प्रयोग करने की ठानी वह झट से उठा और उस लड़के की माता को बुला लाया। और पहले ही उसे पक्का कर दिया कि तेरा लड़का तो मर जायेगा उसने तो तपस्या शुरू कर दी है। माता घबराई हुई आई - हाय! मेरा लड़का मर गया। हाय मेरा लड़का मर गया। रोती चिल्लाती आकर लड़के को लिपट गई।

लड़के ने लपकती आती माता को देख कर अपने आप को सम्भाल लिया। उसे अपनी स्वस्थता का ध्यान आ गया कि उसने सर्वदा स्वस्थ रहना है अस्वस्थ नहीं। माता की विह्वलता में अपने आपको बहादेने में वह अस्वस्थ होना मानता था स्वस्थ होना नहीं। वह माता से बोला —

हे माँ। मैं तो जीता जागता यहाँ तेरे सामने तेरे हाथों में बैठा हूँ तू कैसे कहती है मैं मर गया। मुझे किसने बहका दिया। मैं तो पहले से अधिक स्वस्थ हूँ और तू देखेगी कि दिन दिन अधिक स्वस्थ होता जाऊँगा।

माता ने पूछा — स्वस्थ स्वस्थ क्या कहते हो मैं नहीं समझी।

बालक। - स्वस्थ का मतलब है 'अपने आपे मे रहना'।

माँ — तो फिर इसमे क्या बात है 'अपने आपे मे तो रहना ही चाहिये'।

बालक '- बात तो कुछ भी नही मगर तो मैं कहता हूँ। संसार मे सब लोग अपने आपे में रहें तो अमन चैन न हो जाय। अपने आपे से बाहिर हुए फिरते हैं इसीसे रोना धोना मच रहा है।

पिता - संसार की बात फिर करना पहले घर की तो कर।

बालक - घर की तो कर ही रहा हूँ नही तो क्या बाहर की। आप अपने आपे से बाहिर हो गये तभी तो माँ को बहका लाये। और माँ भी जो अपने आपे में रहती तो इतनी रोती धोती क्यों।

माँ - बातें तो बड़ी अकलमंदी की

करता है पर कभी कभी न जाने इसे क्या हो जाता है।

बालक — होता हवाता कुछ नहीं, जो होना था सो हो चुका. अब तो मैं स्वस्थ हूँ और हमेशाँ स्वस्थ रहूँगा।

पिता बीच में ही भला कैसे? हमेशा स्वस्थ तो कोई भी न रहा।

बालक :- रहा हो या न रहा हो मैं तो रहूँगा और तपस्या से रहूँगा।

पिता :- तपस्या क्या?

बालक :- ब्रह्मचर्य के नियमों का सही तरह से पालन करने का नाम तपस्या है। और मैं तो समझता हूँ ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य दो भिन्न भाव नहीं हैं। ब्रह्म में रहने का नाम ब्रह्मचर्य है और अपने में रहने का नाम स्वास्थ्य है। All in one is Brahma and I am one in all. इसलिये ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य भिन्न भाव नहीं हैं।

लड़के की बुद्धिमत्ता और गम्भीरता को देखकर आज तो पिता मन ही मन फूल रहा था कि बड़ा होनहार लड़का है। परन्तु साथ ही साथ मनमें संकुचित भी था कि लोग उसे क्या कहेंगे? लोग तो कहेंगे बस! इतै लड़का को दिखा, अरे वह तो ब्रह्म की बातें करता है ब्रह्म में उड़ान लेता है भला अब तेरे [illegible] दूर का कैसे रहा। पिता इसी दुविधा में पड़ा उलझन में उलझ रहा था कुछ समझ नहीं आती थी कि क्या करे। माता को तो बालक की बातें सुनते सुनते झेंप आ गई।

बालक ने धीरे से कहा - अरे अम्मा! हुआ यह तो स्वस्थ हुई इससे तो पीछा छूट चुका।

पिता ने कहा — बेटा! अब दूध, पेड़ा, मक्खन, मलाई, खूब खाया करो स्वास्थ्य ठीक रहेगा।

बालक :- पिता जी! स्वस्थता तो अपने आप में रहने से मिलती है। पेड़ा, दूध, मक्खन, मलाई तो मैं नहीं हूँ कि इनमें रहूँ और स्वस्थ हो जाऊँ।

पिता :- प्यार से भरमा। हमारे लिये तो तही मक्खन, मलाई, दूध, पेड़ा सब कुछ है। तेरी बदौलत घर में सब कुछ है। जो तू न होगा तो फिर किस के लिये होगा' कुछ भी न होगा।

बालक - यदि मैं ही सब कुछ हूँ तो मैं [illegible] [illegible]

पहले तो मैंने सोचा कि चन्द्रावती होगी, जो मेरे नये महाराज होने की खबर पाकर रुपया वसूल करने आई है; मगर इतने में ही उस नौकर ने मेरे हाथ में एक चिट्ठी दी, जिसमें दो चार हिन्दी की लाइनें लिखी हुई थी मैं पढ़ते ही एक दम उछल पड़ा। मेरा गुरुकुल के विद्यार्थियों की पार्टी आई है। एक बार तो ख्याल आया कि आज सुदामा और कृष्ण के किस्से को फिर याद करूं। वास्तव में कृष्ण ने जो सुदामा की दरिद्र खोकर अपनी महानता की थी उसके लिये कोई कल्पना या कहानी प्रगट करने या कृष्ण की कोई अलौकिक ईश्वरीय शक्ति मानने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। महामानव कृष्ण चाहता ही है कि [illegible] भाव होता है। कृष्ण के [illegible] भजन की सार्थकता ही इसी में थी कि उसमें सुदामा का पूरा साथ। जरा सोचिये तो कि यदि द्वारिका का प्रासाद स्वर्ग में न होकर यदि किसी जंगल के एक छोटे निर्जन कोने में होता, जहां अनन्तकाल तक किसी आदमी के पहुंचने की सम्भावना ही न होती तो चारु प्रासाद कलश और सिद्धियों से परिपूर्ण होने पर भी कृष्ण महाराज को आराम न देकर काटने ही दौड़ता। सुदामा तो उनकी कृपा को का उपलक्षण मात्र है जिनको द्वारिका के ~~अन्दर~~ प्रासाद के अन्दर पहुंचते और पहुंच कर जो चारों ओर के विशाल वैभव और ऐश्वर्य पर आश्चर्य प्रगट करके कृष्ण के प्रमोद को ही बढ़ाते हैं।

इतना सोचते २ मैं बिल्कुल ही एक दूसरे विचारात्मक क्षेत्र में पहुंच गया। इतने में गजर ने १२ का घण्टा बजाई दिया। मेरा ध्यान बिखर गया। अब मुझे इसकी कल्पना भी नहीं थी कि अब बारह बजने लगे हैं।

गुरुकुल से आई हुई वह पार्टी कितनी देर तक बाहर इन्तजार करती रही होगी, यह मैं कुछ कह नहीं सकता; मगर जब मेरा दिमाग इतनी दूर की छलांग मार कर अपने स्थान पर लौटकर आया तो मैं रजाई के अन्दर ही अन्दर हंस पड़ा। छोटी जमात में एक कहानी पढ़ी थी कि कोई शेखचिल्ली नाम का आदमी सदा हवाई किले ही बनाया करता था। तब मैं किसी आदमी की मनहीन कल्पना करके उसका नाम शेख चिल्ली रख देता था और सोचा करता था कि कैसा बेवकूफ होगा वह शेख चिल्ली, जो एक गाय की सन्तति का विक्रय करके महल बनाने की सोचता है मगर अब समझ आती है कि हो सकता है वह शेख चिल्ली मेरे जैसा कोई पढ़ा लिखा शेखचिल्ली

ही हो।

मैं भी रजाई के अन्दर पड़ा पड़ा एक दम जो काश्मीर का महाराजा बन गया, उसकी प्रक्रिया भी कुछ २ वैसी ही थी। अपनी नई, बेलबूटे दार रजाई के प्रताप से पहले पहल मुझे मखमली हरे २ गद्दे ख्याल आये, फिर गद्देदार कुर्सियां और फिर राज महल। अब रह गया था केवल उस राजमहल का मालिक बनना; सो यह मेरे दिमाग के लिये कोई ऐसी कठिन बात नहीं थी खास कर रजाई में घुसने के बाद, जब कि उस पर से बुद्धि और तर्क की लगाम बिलकुल ही हटा ली जाती है।

आप रेलवे स्टेशनों पर बहुत बार गये होंगे आपने देखा होगा कि किसी दूर खड़े हुए गाड़ी के डिब्बे को यदि गाड़ी के साथ जोड़ना हो तो कुली लोग क्या करते हैं। पहले सब के सब मिल कर उसको पीछे से धकेल देते हैं और फिर एक दम निश्चिन्त से हो जाते हैं। धक्का खाने के बाद वह डिब्बा स्वयं पटरी २ चला जाता है और सीधा वहीं जाकर रुकता है, जहां अगला डिब्बा उसके साथ जुड़ने के लिये प्रतीक्षा कर रहा होता है। बस ठीक यही दशा रजाई में घुसने के बाद दिमाग की भी होती है। आप एक बार उसको विचार रूपी पटरी पर धकेल कर दीजिये, फिर आपको बार बार बीच में धक्का देने की जरूरत नहीं है, वह स्वयं अपने अभीष्ट स्थान पर ही सीधा जाकर खड़ा होगा।

गाड़ी का डिब्बा एक बार गति प्राप्त करके फिर क्रमशः धीरे होने लगता है और फिर ब्रेक लगने पर एक दम ठहर जाता है उस प्रकार की कोई सम्भावना मेरे इस दिमाग रूपी डिब्बे के साथ तो थी ही नहीं क्यों कि ऐसे मौके पर आम तौर से जो चीज ब्रेक का काम करती है, वह नींद मुझसे कोसों दूर थी। इसलिये जब रात को मैं रजाई के अन्दर घुसा तो मैंने सोचा कि दिमाग को जब उछल कूद मचानी ही है तो उसको किसी ऐसी दिशा में धक्का देना चाहिये जहां कुछ प्राप्ति भी हो। वाह! खूब सोचा!!

सोचते २ एक बात ख्याल में आयी। क्यों न कल से जलसे के लिये कोई कविता ही पड़े पड़े रच डालूं। Good! Good!!

पहले पहल मैंने सोचा कि फूल पर कविता करूं पर थोड़ी देर में मैंने देखा कि फूल पर जो भाव आ रहे हैं, वह कुछ मौलिक नहीं हैं, पुराने घिसे हुए भाव हैं। तब मैंने भौंरे को पकड़ा। मगर थोड़ी देर में वह भी लजा कर अपनी पंखुड़ियां फड़फड़ा कर भाग निकला। मैंने सोचा कि

[illegible] ! खूब रहे!!

यह अच्छी मुसीबत आयी। फूल भी नहीं भौंरा भी नहीं अब कविता करूं भी तो किस चीज पर करूं? बात यह है कि कविता भी गप्प की तरह अपने आप तो कभी अचानक शुरू हो जाया करती है मगर यदि कोई कविता करने के लिये ही यदि बैठ जाय तो जिस प्रकार इस तरह करने से गप्प नहीं शुरू होती कविता भी नहीं शुरू होती। Excellent !!! [illegible]

छोटी श्रेणियों में हमें सर्दी कांपने के लिये जुराबें मिला करती थीं मगर सर्दी कांपने की अपेक्षा गेंद बल्ले की खेल हमारे लिये अधिक आवश्यक थी। इसी लिये इन जुराबों से तागा निकाल निकाल कर बड़ी सुन्दर सुन्दर गेंदों का निर्माण हम किया करते थे। उन जुराबों की पड़ताल होने पर हम अधिष्ठाताओं से किस तरह तिकड़म बाजी करते थे, इसका वर्णन एक तो अप्रासंगिक होगा और फिर लम्बा भी हो जायगा इसी लिये छोड़ देता हूँ।

हां तो इन जुराबों से तागा किस तरह निकाला जाता था इसका तरीका आप सबको अनुभव होगा। जिनको अनुभव नहीं उनको मैं बतला देता हूँ। जुराब हाथ में लेने पर शुरू में उसका कोई छोर आपको ~~[illegible]~~ नहीं मिलेगा। आप कभी इधर सिरे से उधेड़ते रहेंगे और कभी दूसरे से मगर जब एक बार सूत आपके हाथ में आ गया तो फिर वह फटाफट अन्त तक निकलता आयेगा बस यही हाल कविता का है। आप लाख सिर पटकिये आपके हाथ अन्त तक सिरा नहीं आयेगा। मगर जहां एक बार सूत जम गया फिर चाहे आप दिन भर कविता करते चले जाइये।

[illegible]

रात में यों ही भारती पुन आती और गुनगुनाने लगता, ते [illegible] बातों के [illegible] पर कुछ कोई ख्याल भी सोचना पड़ता। पास बिस्तर [illegible] था, इसी लिये मैंने सोचा कि कुछ और प्रोग्राम होना चाहिये। सिनेमा देख चुका था, मगर मुझे नींद अब भी नहीं आयी थी। और नींद आती होती तो क्या, कुछ न कुछ कल के सम्मेलन में सुनाना था। [illegible] खूब [illegible] जानता था [illegible] बार भली बनाकर देख चुका कि [illegible] के [illegible] कोई भाग न [illegible] तो [illegible] जायगे। फिर [illegible] ही है, भाग न लेने पर भली [illegible] यह सोचकर मुझे [illegible] समझने लगे तो [illegible]। इसलिये तो किया कि कुछ न कुछ सोचूंगा जरूर ही चाहे कुछ भी [illegible]

[illegible]

I.

"आज इसी आम्रवन में विश्राम होगा — अतः आगे का समय अब नहीं होगा" तथागत ने अपने भिक्षुओं को आदेश दिया।

"भगवान की जो आज्ञा" — भिक्षुओं ने विनम्र भाव से कहा।

एक अत्यन्त प्राचीन विशाल आम्रवृक्ष के नीचे की भूमि साफ कर दी गयी और वहाँ तथागत का आसन बिछा दिया गया। तथागत की सौम्यमूर्ति को घेर कर शिष्य भी वहीं बैठ गये।

मार्ग की विश्रान्ति का निवारण करने के लिये एक शिष्य समीपस्थ सरोवर से शतदल-सम्पुट में जल लाकर बोला—

"ग्रहण कीजिये भगवन्!"

तथागत ने मुस्करा कर जल-ग्रहण कर लिया। अस्ताचल-गामी अस्तप्राय रवि की सुकुमार किरणें भगवान के ललाट-प्रदेश पर स्थित श्रम बिन्दुओं को चमका रही थीं; तथागत शान्त थे और निस्तब्ध भी उनकी शिष्य मण्डली, किसी की भी निस्तब्धता भंग न [illegible]।

II.

जब अम्बपालिका को ज्ञात हुआ कि तथागत भगवान् उसके आम्रवन में विश्राम के लिये ठहरे हुए हैं तो वह भगवान् के दर्शनों के लिये व्याकुल हो उठी, किसी अनुचर को साथ लिये बिना ही वहाँ पहुँच गयी।

भगवान् के समीप पहुँच कर वह उनके चरणों पर लोट गयी और भावावेश-पूर्ण स्वर में बोली— "मुझे ज्ञात न था कि आज तथागत के पुनीत-चरण-कमल से मेरा उद्यान पवित्र हुआ है। भगवन्! मुझे क्षमा करें।"

"देवि! तुम्हारे उद्यान में हमने अति सुख प्राप्त किया। हम तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं।"

अम्बपालिका उठी और कर-सम्पुट जोड़ कर उसने प्रार्थना की— "भगवन्! यदि प्रसन्न हैं, तो इस अकिंचन नारी के गृह पर भोजन ग्रहण कर इसे कृतार्थ करें।"

डाक्टर साहब

१.

डाक्टर देवीप्रसाद की कोठि के सामने एक मोटर आकर ठहरी, उसमे से एक युवा पुरुष जो कि पोशाक से किसी उच्च घराने का प्रतीत होता था उतरा, और उसने सीधे अन्दर आकर पूछा-:

"डा साहब कहां है ?" चौकीदार ने बडे अदब से जवाब दिया-

"डा साहब सो रहे है, कहिये क्या काम है ?"

युवक — "उन्हें एकदम बुला लाओ बहुत जरुरी काम है।"

चौकीदार ने दूसरी तरफ मुड कर नौकर को आवाज दी, और कहा-

"आ जल्दी, डा साहब को बुला ला, बाहिर बाबू उनकी प्रतीक्षा कर रहें हैं।" और फिर उस युवक की ओर मुंह फेर कर बोला — "आईये साहब, यहां बैठिये, डा. साहब अभी आते हैं।"

इतने से डा. साहब आ पहुंचे। उस आगान्तुक बाबू ने एक दम सौ रुपिये का नोट टेबल पर रख दिया और घबराया हुआ बोला —: "लीजिये ये है, और जल्द मेरे साथ चलिये। मेरी माँ सख्त बीमार है। इस समय हालत बहुत खराब है। आपको साथ ले जाने के लिये ही स्वयं मुझे मोटर पर आना पडा है।"

डाक्टर देवीप्रसाद स्वभाव से ही लक्ष्मी के अनन्य भक्त थे। उनके यहा यद्यपि पैसे की कमी न थी और नाहिं योग्यता की कमी, पर तो भी किसी गरीब की परछांई भी उनके हस्पताल में पडती दिखाई न देती थी। गरीबो के नाम से उन्हे चिढ थी और दान से दूर भागते थे। वे उन नोटो की तरफ नजर मार कर बोले हमारा काम तो पहिले बीमार और बीमारी पडता है, और पीछे धनी और धन से। पर उस आगान्तुक ने एक न सुनी, और नोट उनके हाथ पकडा ही दिया।

डाक्टर साहब बोले-

"इसलिये मैं अभी कपड़े पहन कर आता हूं।" पर मन ही मन सोचने लगे कि आज तो खूब हाथ लगेगा।

डाक्टर साहब कपड़े पहन कर अपने कम्पाउण्डर को साथ ले उसी की मोटर पर आ बैठे। मोटर चल पड़ी।

२

आध घन्टे बाद मोटर शहर के बाहिर झोपड़ियों से घिरे हुए एक हिस्से में आ पहुंची। सर्वत्र अन्धकार का पूर्ण राज्य था। कई झोपड़ों में से रुक रुक कर दर्द भरी आवाज़ आ रही थी। मोटर के लैम्पों के प्रकाश में झोंपड़े दरिद्रता की साक्षात् मूर्ति मालूम पड़ते थे। थोड़ी देर बाद एक झोंपड़े के सामने मोटर रुक गई। डाक्टर साहब बड़े आश्चर्य में थे कि क्या होने वाला है? इतना धनी मनुष्य और फिर उसका यहां क्या काम? अस्तु, वे भी उसके पीछे पीछे झोपड़े में घुसे। झोंपड़े में जिधर देखो उधर अन्धकार दिखाई देता था।

डाक्टर साहब बोले -: "कहिये कहां है आपकी माँ? क्या आप- - - -।" अभी डाक्टर साहब पूरा भी न बोल पाये थे कि वह कहकहा मार कर हंस उठा।

डाक्टर साहब डरे, कि कहीं यह डाकू तो नहीं? मुझे यहां पर फंसा कर तो नहीं ले आया? वे बाहर सड़क की तरफ लपके पर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो उनके पाँव ज़मीन से चिपक गये हों। वे थर थर काँपने लगे।

इतने ही में झोपड़ी एक दिव्य प्रकाश से चमक उठी। डाक्टर साहब ने देखा कि उसी पूर्व परिचित आदमी के चेहरे से ये किरणें फूट रही हैं। वह दिव्य पुरुष बोला-: "डाक्टर साहब! जानते हैं कि आपको मैं यहां क्यों लाया हूं?"

डाक्टर साहब मंत्र-मुग्ध से होकर बोले-"नहीं"।

उसी गम्भीर आवाज़ से दिव्य पुरुष बोला-: "आपको यहां लाने का कारण केवल यही है कि मैं आपको बताना चाहता हूं कि आपका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत है। केवल पैसे के बल पर ही जब तक को बुला कर देने वाले रईस लोग ही आपके कार्यक्षेत्र में नहीं आते, यह झोंपड़ी उन सब गरीब लोगों की प्रतिनिधि स्वरूप है जो एक बार भी आप तक नहीं पहुंच सकते। डाक्टर साहब। आपका उद्देश्य महान् होना चाहिये।" यह कह कर वह दिव्य पुरुष चुप हो गया।

डाक्टर साहब ने ज्यों ही सिर ऊपर उठाया तो अन्धकार ही अन्धकार अपने चारों तरफ पाया। वे चौंक उठे, और उनकी आँखें खुल गईं।

इस घटना से डाक्टर साहब के जीवन और स्वभाव में एक नया ही परिवर्तन आ गया। वे अब पुराने देवीप्रसाद न रहे।

मान कर जितनी चीज आई है, उसे दे आ, उससे क्षमा-मांग, प्रायश्चित कर, और भगवान से शक्ति मांग कर आगे के लिये प्रतिज्ञा कर कि हे घट २ में व्यापक प्रभो! अब मैं सत्य का, अस्तेय का, व्रत लेता हूं। तू व्रतपति है। तू मेरी सहायता कर मैं पाप से झूठ से बचूं और सत्य के प्रकाश को प्राप्त होऊं।

मेरे अन्दर निश्चित हो, मुझे चोरी करने की स्वाभाविकता है। तूने शक्ति दी है। इस शक्ति को बढ़ाऊं। अपने बाहुबल से कमाऊंगा, नेक कमाई करूंगा। सच्चाई का व्यवहार करूंगा। फिर सब रत्न मेरे पास आयेंगे और मैं आनन्द से, [illegible] कर जीवन व्यतीत करूंगा

— [illegible] लाल [illegible] जी
C. A.

हिन्दु विश्वविद्यालय में

गुरुकुल

[illegible] १९५४।

महामना मालवीय जी की अनुपम कृति हिन्दु विश्वविद्यालय का नाम सुना तो बहुत था किन्तु इससे पूर्व कभी देखने का अवसर न प्राप्त हुआ था। वादविवाद के लिये पटना जाते हुए हमारा दल बनारस उतरा अवश्य था किन्तु समयाभाव के कारण हिन्दु विश्वविद्यालय को तो प्रोग्राम में स्थान ही न दिया गया था यद्यपि उसे देखने की मेरे मन में प्रबल आन्तरिक अभिलाषा विद्यमान थी। आखिर भविष्य के पर्दे को फाड़ कर उस बात को कौन देख और समझ सकता था कि मुझे फिर भी बनारस आना है - और केवल हिन्दु विश्वविद्यालय जीतने के लिये। यह तो सोलह दिन बाद ही भाग्य ने बताया कि मुझ जैसे नाचीज़ जीव को भी उस विश्वविद्यालय के अन्दर एक महत्वपूर्ण कार्य का सम्पादन करना था।

बनारस प्रतियोगिता के लिये तय्यारी करने की कुछ भी इच्छा न होते हुए मित्रों ने मुझे घरेलू प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये प्रेरित किया। उनमें [illegible] हिन्दु विश्वविद्यालय को देखने की उत्कट अभिलाषा भी एक थी। दिल में यही विचार था कि कभी २ तो अन्धों के हाथ भी बटेर लग जाती है और अन्धों में [illegible] भी सरदार हो जाते हैं। भविष्य का अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता। बड़े बड़ों की अभिलाषायें और योजनायें बिना पूर्ण हुए ही उनके साथ समाप्त हो गये। फिर हम कौन खेत की मूली हैं? इसी लिये अपनी घरेलू प्रतियोगिता में द्वितीय आने पर भी मन को इस बात का सन्तोष और हर्ष था कि 'न सही पहले दूसरे ही सही'। किन्तु परमात्मा [illegible] प्रभु की कृपा से उस विश्वविद्यालय को देखने का अवसर तो मिला जिसे लोग एशिया भर में अद्वितीय शिक्षा केन्द्र कहते हैं और जिसकी अन्तर्राष्ट्रीय महत्ता के स्रष्टा प्रातःस्मरणीय मालवीय जी रहे हैं; यद्यपि उनके दर्शन होने की अभी कोई आशा नहीं।

बनारस जाने वाले हम कुल मिला कर चार थे। ब्र० नित्यानन्द जी तो यहीं से प्रबन्धक हो कर गये थे। ब्र० पूर्वकाम जी अतिरिक्त वक्ता के रूप में हमारे साथ थे। श्री मदनलाल जी वक्ता अध्यक्ष के रूप में थे। [illegible] सुमन आनन्दी जी व मैं और आप हमारे साथ बिलकुल एक होकर रहते थे। वादविवाद से पूर्व आराम मिल

सके इसलिये हम १६ को ही सीधे हिन्दू विश्वविद्यालय पहुंच गये। यद्यपि वादविवाद १८ को था। थोड़ी दूरी से ही विशाल भवनों और विस्तृत प्रदेश ने विश्वविद्यालय की सूचना दे दी थी। वहां कोई हमारे गुरुकुल के आश्रम जैसी रौनक व भीड़ न थी। स्थान भी खास सुन्दर नहीं था। सड़कों की यद्यपि सुव्यवस्था थी, पर बड़े २ भवनों से उनका कोई मेल न था। ऐसी ही एक सड़क पर हिंदुस्ता-विद्यार्थी-निवास के एक कोने पर हमारी गाड़ी रुकी। प्रोफेसर जी के साथ होने से हमें कुछ अधिक चिन्ता न करनी पड़ती थी। हमने आश्रम के एक विद्यार्थी से 'हिन्दी साहित्य सभा' के मन्त्री श्री लक्ष्मी नारायण जी सुधांशु के विषय में पूछा। उसने बड़ा अजीब उत्तर दिया। 'सुधांशु साहिब! यह तो उनको पता होगा जो इन बातों में interested हैं। हमें तो पता नहीं।' ऐसी बात हमारे गुरुकुल में नहीं हो सकती। मेरे ख्याल में इसका कारण सम्भवतः उस विश्वविद्यालय की विशालता और वहां का जीवन ही है। उसके बाद हमने किसी महानुभाव से पता किया- वे भी उस विषय में कुछ न जानते थे। किन्तु उनकी भद्रता इससे स्पष्ट है कि उन्होंने साथ होकर और इधर उधर से पूछ कर हमें ठीक ठिकाने पहुंचा दिया। निःसन्देह सुधांशु जी बड़े भले और सज्जन व्यक्ति थे। उन्होंने हमारा यथाशक्ति उचित प्रबन्ध कर दिया। उनके सहायक श्री रामविहारी शुक्ल बड़े भले और मिलनसार तथा खुश आदमी थे। हमारे यहां वे काफ़ी समय बैठे गप्प लड़ाया करते थे। और भी कुछ एक विद्यार्थियों का हमसे परिचय हो गया था और वे बड़े मान और नम्रता से तथा सभ्यता से पेश आते थे। १६ तारीख को तो हम भोजनादि से निवृत्त होकर गप्प शप्प लड़ा कर सो गये। अगले दिन से वहां का प्रोग्राम था। हम सब नित्य कर्मों से निवृत्त होकर, भोजनादि करके घूमते हुए उस स्थान को चल दिये जहां नवस्नातकों का समावर्तन संस्कार और उपाधिवितरण किया जाता था। वह स्थान अच्छा सजा हुआ था। गेंदे के फूलों की सजावट में भरमार थी। एक गान्धी जी का चित्र और तिरंगा झण्डा स्टेज के पीछे लगा हुआ था। तिरङ्गा झण्डा प्रायः बड़े २ इमारतों पर लगा हुआ था। इस स्थान पर स्वयं सेवकों का बड़ा कड़ा प्रबन्ध था जो कि वहीं के विद्यार्थी थे। हमें सुधांशु जी आदि ने कहा था कि आपको अन्दर स्थान मिल जायेगा, प्रवेश पत्र आदि की आवश्यकता नहीं, अतः हम निश्चिन्त थे। किन्तु वहां द्वार पर ही एक स्वयंसेवक ने कह दिया कि 'सब कुछ ठीक है पर अफ़सोस है कि मैं आपको अन्दर बैठने

की आज्ञा नहीं दे सकता, क्योंकि
आपके पास कोई प्रवेश पत्र आदि
नहीं है। और अब उसको प्राप्त
भी नहीं किया जा सकता।" प्रो.
शर्मा जी ने थोड़ी मगज़ पच्ची
करके वहाँ के प्रहरी से मिलने
का यत्न किया। परिणामतः उन-
को कुछ आगे और हमको कुछ पीछे
स्थान मिल गया। लाउड स्पीकर
आदि का प्रबन्ध था। राष्ट्रिय गान
आदि के अनन्तर कार्यक्रम प्रारम्भ
हुआ। स्नातकों की संख्या यहाँ की
अपेक्षा कहीं अधिक थी। एक आध
साल से यहाँ विद्यार्थियों की संख्या
बहुत बढ़ गई है क्योंकि दक्षिण के
कालेजों से निकाले गये लगभग
डेढ़ हज़ार विद्यार्थियों को
महात्मा जी के आदेश से पं० माल
वीय जी को अपने विश्वविद्यालय
में आश्रय देना पड़ा है। नव स्नातकों
के लम्बे चौड़े जलूस के पीछे विश्व
विद्यालय के प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष
थे, आचार्य ध्रुव, मालवीय जी, बना
रस के महाराज तथा अन्य प्रतिष्ठित
व्यक्ति थे। नव स्नातकों के इतने बड़े
जलूस में कम से कम मुझे तो एक
व्यक्ति ऐसा नज़र आया जिसे चेहरे
से प्रतिभा सम्पन्न कहा जा सकता
न शक्ल थी, न शरीर और न वेष
भूषा। सम्भवतः उसका कारण उन
का खानपान, प्रथा, परम्परा में, रहन
सहन, खान पान और वेष भूषा है।
यहाँ पर अपने गुरुकुल के समावर्तन
संस्कार और हिन्दू विश्वविद्यालय के
समावर्तन संस्कार के विषय में तुल-
नात्मक दृष्टि से दो चार शब्द लिख
देना अनुचित न होगा। सचमुच
यहाँ का यह संस्कार हमारे संस्कार
का पासंग भी नहीं है। रौनक आदि
की दृष्टि से तो कोई मुकाबिला ही
नहीं है। यहाँ तो समझिये किस
तरह से पञ्जाब तथा अन्य प्रान्तों
की आर्य जनता का बड़ा भाग आ जाता
है। गुरुकुल का वार्षिकोत्सव आर्य
समाजियों का अच्छा खासा मेला
हो जाता है। किन्तु वहाँ तो विश्वविद्या
लय के अध्यापकों और छात्रों को
छोड़ कर बाहर से तो क्या बनारस
शहर से आने वाले सज्जन भी थोड़े
ही होते हैं। स्नातक यदि यहाँ १५
होते हैं तो वहाँ २०० होते हैं किन्तु
जो भाव उस अवसर पर हमारे
ब्रह्मचारियों तथा स्नातकों में
उदित होते हैं उसका वहाँ कोई स्थान
नहीं। मालवीय जी के भाषण के
समय यदि कुछ भाव उठते हैं तो
न के बराबर। हमारे संस्कार की
गम्भीरता और पवित्रता वहाँ रह
नहीं सकती। यह भी एक business
सा होता है। संस्कार में थोड़ा सा सं-
स्कृत को अवश्य स्थान दिया गया
है जो उनमें यहाँ की विशेषता प्रतीत
हुई। यहाँ की तरह बड़े २ संन्यासियों
के सन्देश तथा महात्माओं के
उपदेश वहाँ सुनने को नहीं मिलते।
हमने बोले वहाँ के बोले [illegible]

सुन्दर है। इन सब बातों को देखकर अनुभव होता है कि कुलपति स्वामी श्रद्धानन्द जी ने यहां गुरुकुल प्रथा और वर्ण का प्रारम्भ तथा प्रचार बहुत सोच कर किया था। काशी के साथ साथ सौन्दर्य के लिये भी उनके दिल में ख्याल था। उस संस्कार के अवसर पर भी मुझे यह अनुभव हुआ कि यद्यपि हमारा गुरु-शिष्य सम्बन्ध किन्हीं दृष्टियों से यद्यपि त्रुटिपूर्ण है तो भी शिष्टाचार और सभ्यता से हम अपने अधिकारियों और गुरुजनों से पेश आते हैं तो बात वहां नहीं है यद्यपि अन्य सरकारी विश्वविद्यालयों की अपेक्षा यहां उस ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। एक मालवीय जी को छोड़ कर यहां किसी और का पता नहीं है और न शिक्षा हिन्दी पर कुछ चलती है। स्नातक होने वालों की संख्या अधिक होने से जहां मालवीय जी उपाधि वितरित करते हुए थक गये थे वहां हमें भी उनका भाषण सुनने की उत्सुकता थी। अलवर नरेश का भाषण तो पाठकों ने समाचार पत्रों में पढ़ लिया होगा। आचार्य ध्रुव के उपदेश की कल्पना आचार्य देव[illegible] जी के उपदेश से भी ना सके हैं। यहां तक मालवीय जी का भाषण आ. रामदेव जी के भाषण की तर्ज पर था यद्यपि उसमें कुछ व्यक्तिगतता की झलक अधिक थी जिस को मालवीय जी का ध्यान अब यूरोप यात्रा के बाद बड़े वेग से आकृष्ट हो रहा है। आपने विश्व विद्यालय के उद्देश्य और उसकी कार्यपद्धति का अच्छा चित्रण किया गया था। मालवीय जी के भाषण से तथा कुछ महानुभावों से अलग बातचीत करने से इतना स्पष्ट प्रतीत होता था कि हिन्दू विश्वविद्यालय हमारी अपेक्षा हिन्दी भाषा की उन्नति की ओर कहीं अधिक ध्यान दे रहा है। कितने वर्षों से हमारी शिक्षा का माध्यम हिन्दी भाषा है किन्तु हमने उसे शिक्षा माध्यम बनाने की ओर न के बराबर ध्यान दिया है जब कि हिन्दू विश्वविद्यालय एक विशेष कार्यक्रम को लेकर हिन्दी के अन्दर उस योग्यता को उत्पन्न कर रहा है जिससे वह उसको शिक्षा का माध्यम बना सके। कार्य प्रारम्भ हो चुका है और उसकी अवधि निश्चित है जब तक उसे पूरा हो जाना है। विश्वविद्यालय की शिक्षा के योग्य साहित्य को हिन्दी में तय्यार किया जा रहा है। जहां दीक्षान्त का भाषण अभी भाषण अंग्रेजी में ही होता था वहां उस वर्ष [illegible] के न आ सकने से स्वयं मालवीय जी ने जो अभिभाषण दिया वह भी हिन्दी में ही था। एक बात जो उन्होंने भावों की नहीं की [illegible] और मैं पाठकों का ध्यान उस पर आकर्षित करना चाहता हूं। प्रतीत होता था कि उनका आत्मा बोल रहा है। धन की और कुछ [illegible] की [illegible] की बातों के बाद [illegible] की ओर हाथ उठा कर मालवीय जी ने कहा था कि "मैंने भी अपने जीवन में एक दो उपाधियां प्राप्त की हैं और जानता हूं कि उस अवसर पर कितना अनिर्वचनीय आनंद और उत्साह होता है। आज उसी हर्ष

अपने जीवन की किसी सफल घड़ी में यदि मैं किसी को याद करूंगा तो उन में इष्ट कुल माता का नाम सबसे पहले होगा। १८ तारीख को प्रातः ८½ बजे हमारी वादविवाद प्रतियोगिता थी। उस दिन थोड़ी सी हमें तैयारी की चिन्ता हुई। प्रतियोगी लोग भी आए गये थे और पता लग गया था कि इस वर्ष की प्रतियोगिता अद्भुत होगी है क्यों कि ३०, ३२ वक्ता भाग लेने वाले थे। समय बहुत थोड़ा मिल सकता था, किन्तु सब भी उत्सुक होरहे थे। अनेकों लोग तो सब पढ़े लिखे विद्यार्थी, उपाध्याय और सम्मान-नीय थे। यहाँ भी पता लग गया था कि कुछ ही भूल होने पर विद्यार्थी लोग बेंचों का नाक में दम कर देते हैं। मुझे अपने मैटर की ही कुछ चिन्ता थी क्योंकि समय थोड़ा था। नित्यानन्द जी को गले की विशेष चिन्ता थी। साथ में दो खाली व्यक्तियों - गोपाल जी और सूर्य लाल जी के होने से हमें अपनी चिन्ता को छोड़ कर गपशप भी लगानी पड़ती थी। यह अच्छा होता था। ८½ बजे हम मण्डप में पहुंच गये। मालवीय जी की गीता और भागवत की कथा चल रही थी। लगभग आधे समय के अन्दर कौन बोल सकता था, सब परेशान थे। किन्तु बजे उनकी कथा के अनन्तर हमारा कार्य प्रारम्भ हुआ। सभापति के पद पर संयुक्त प्रान्त की व्यवस्थापिका सभा के सभापति सर सीताराम जी थे उनके सभी समालोचक शिरोमणि श्याम बिहारी मिश्र और उनके उपन्यास सम्राट श्री प्रेमचन्द जी विराज रहे थे पीछे की ओर प्रतियोगी गण कुछ व्यक्ति बैठे थे जनता काफी तादाद में थी। इतनी बड़ी सभा में बोलने का सम्भवतः हम दोनों का प्रथम ही अवसर था। भाई नित्यानन्द जी का 6वां नम्बर था और मेरा १८ वां। नित्यानन्द जी शायद अपना नाम थोड़ा और पीछे चाहते थे किन्तु मैं अपना नाम जल्दी चाहता था, कुछ तो मैं आदत से लाचार था और इस पर मुझे विपक्ष में बोलना था अतः मैटर को मैं उपेक्षा न कर सकता था। पीछे उसके समाप्त हो जाने का भय था। खैर, अपनी बारी पर अब बोलना ही था। अनेक प्रतियोगी वहां बैठे हुए भी अपने भाषण कण्ठस्थ कर रहे थे। आगरे के विशेष अलाहाबाद के भी प्रतिनिधि आये थे कुछ घबड़ाहट भी अवश्य थी। जिस समय नित्यानन्द जी बोल चुके उस समय इतना सन्तोष अवश्य हुआ कि अपने से पूर्ववर्ती वक्ताओं को अतिक्रमण करने में वे सफल रहे। सूर्यलाल जी मेरे पास बैठे थे और अब वे मेरे दिल मजबूत कर रहे थे। मेरा समय भी पास आ रहा था। मैं यही सोच कर रहा था कि ज़रा अपने को विचार के प्रवाह में बहा लूँ। सफल होकर लौटने की और असफल होकर लौटने पर गुरुकुल के बदनाम होगा - इत्यादि इत्यादि विचार भी आंखों के सामने आया

जिस समय मैं स्टेज पर गया तो भूल गया कि सामने कितनी जनता बैठी है और कौन निर्णायक हैं। जल्दी २ अपना वक्तव्य उपस्थित करता था। विषय के अध्ययन और मनन से जो बात हृदय में बैठ गई थी उसी का रूप मैं भाषा का सहारा लेकर मैंने जनता के सामने उपस्थित कर दिया। सुना था कि हिन्दु विश्वविद्यालय की जनता को कब्र करना बड़ा टेढ़ी खीर है किन्तु मेरा तो उसने पूरा साथ दिया। यहां तक कि हर्ष ध्वनि और करतल ध्वनि का समय भी पूरे भाषण की समाप्ति पर ही आया। भाषण के बाद मैंने अपने को बड़ा हल्का अनुभव किया क्योंकि अब हारने व जीत किसी भी प्रकार की चिन्ता न रह गई थी। लोगों ने इन दोनों के भाषणों को बहुत पसन्द किया। वे अनुमान करने लग गये थे कि ट्राफी तो गुरुकुल की है, कोई मुझे प्रथम कहता था और कोई शिवानन्द जी को पर इस सब कोई चिन्ता न रह गई थी। प्रो० रमल जी भी खुश थे। राम प्रसाद जी हमारे साथ थे। अब तो औरों की आलोचना तथा अपना भी देखना ही शेष कर्म था। जो मिलता था - यही कहता था कि "In anticipation I congratulate you" उस से पूर्व हम वहां के विद्यार्थियों से अपरिचित से ही रहते थे किन्तु अब चारों ओर से अंगुलियां हमारी ओर उठती और हिलते नजर आते थे। अधिक वक्ता होने से निर्णय

की दो बैठके कर दी गई थी। दूसरी बैठक में अहिन्दी भाषा भाषी प्रान्तों के विद्यार्थी भाग लेते रहे थे। प्रथम बैठक की समाप्ति पर सर सीता राम ने मेरे कन्धों पर हाथ फेरते हुए इतना तो कह दिया था कि, भाई तुम तो बहुत अच्छा बोलते हो। गुरुकुल का स्वयं भी यहां के विद्यार्थियों के लिये आदर्श है।"" शेष निर्णायकों के व्यवहार तथा वार्तालाप से भी यही पता लगता था कि उन्होंने गुरुकुल की ओर से की गई वक्तृताओं को अधिक पसन्द किया है। दूसरी बैठक के बाद ४ बजे के लगभग निर्णय सुनाया जाना था। मण्डप में चारों ओर शोर हो रहा था। नाना प्रकार की ध्वनियां उठ रही थी। लोगों ने अपने कागजों पर अपना निर्णय भी लिख लिया था। सब की आंखें निर्णायकों की ओर थी। हम जान बूझ कर काफी पीछे बैठे थे ताकि सफलता न मिलने की अवस्था में भद्द तो न उड़े। हम भी चिन्ता और उत्सुकता से निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ अवसर के पश्चात महामना मालवीय जी ... ताराम जी ने प्रथम पदक के लिये मेरा नाम का जो उद्घोष आया उसका वर्णन इस तुच्छ लेखनी द्वारा कर सकना मेरे लिये कठिन है। हम दूर बैठे थे अतः स्टेज तक आने में देरी स्वाभाविक था। रास्ते में कि लोग मेरी पीठ पर शाबाश देते जाते थे। कुछ अपने मुख विकार को छिपाने के लिये मैं निचले ओष्ठ को दांतों से दबाने लगा

पर पहुँचा। सीताराम जी ने मेरे से हाथ मिलाया और पदक पर कि "हमने तो पहले ही कह दिया था कि तुम कमाल कर दोगे। प्रथम आने के लिये बधाई। इस बात का ध्यान रखना कि उस पदक की कीमत उसमें लगे सोने से कहीं अधिक है।" प्रथम पारितोषिक मुझे पकड़ा दिया। मैंने भी सब को झुक कर कृतज्ञता पूर्वक नमस्कार किया और प्रेजीडेन्ट के सामने झुक कर अपने स्थान पर चला गया। बन्धुओं ने "Buck up Brahmachariji; Buck up - [illegible]" इत्यादि नाना हर्षध्वनियों से गूंज रहा था। दूसरा इनाम अव्वल हुए हैं Robertson College के एक प्रतिनिधि को मिला था यद्यपि निर्णायक जी को न देकर उसको इनाम देना हमें पर्याप्त आश्चर्यजनक हुआ प्रतीत हुआ। [illegible] मिशन के बाद अब विजयी पुरस्कार का और संस्था का प्रश्न था। इसके निर्णय में कुछ अधिक समय लगता हुआ प्रतीत हुआ जिससे हमें भी कुछ चिन्ता हो गई। फिर दूसरा इनाम भी और संस्था के पास चला गया था यद्यपि किसी संस्था के दोनों प्रतिनिधियों का रिकार्ड गुरुकुल जैसा निर्णायक न था। पास बैठे लोग कह रहे थे कि देर किस बात की होती है - ट्रोफी तो गुरुकुल की है। किन्तु देरी होने के कारण हमारी धुकधुकी बढ़ती जा रही थी। अन्त में गुरुकुल के पक्ष में निर्णय सुनाया गया। बड़ी हर्षध्वनि में हम दोनों भाइयों ने ट्रोफी को लेकर सफलता की शान में प्रो. साहब जी के चरणों में धर दिया जो कि स्टेज पर बैठे थे। मेरा पदक कभी और दर्शकों के हाथों में घूम रहा था सभा के बाद लोगों ने हमको घेर लिया और तारीफ करते हुए ट्रोफी आदि देखने लगे। अब हम जिधर भी जाते थे लोग सम्मान और सभ्यता से देखते थे और बधाइयों पर बधाइयां आ रही थीं। स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि लोगों के दिलों पर गुरुकुल की धाक है। यह दूसरी विजय थी - मामूली बात न थी। हमें भी इस बात का गर्व था कि पता नहीं आगे कुल माता की सेवा का अवसर मिले या न मिले किन्तु इस मौके पर हमने गुरुकुल की कीर्ति को उज्ज्वल बनाये रखा और खास दायरे में उसके मस्तक को ऊँचा करने में कुछ मदद की।

यूं तो अब हम निश्चिन्त थे किन्तु संस्कृत के बाद विवाद का प्रश्न था। जो देखने भी जाते उस में भी भाग लेने के लिये प्रेरित कर रहे थे। पीछे से प्र. सत्यव्रत जी तथा प्र. अनुभव जी ने [illegible]

से हम उलझन से मुक्त हो गये।

१९ को संस्कृत का वादविवाद था। चन्द्रगुप्त जी को अपना भाषण ज़बानी रटना पड़ा था और सत्यपाल जी ने भी तैयारी कर ली थी। संस्कृत के वादविवाद की प्रत्येक बात अद्भुत थी। हॉल की आँगन थी, बहुत बड़ी और बेहूदा थी। ८ इनाम थे और किसी ढंग से न थे। एक संस्था से ८-८ व्यक्ति आये हुए थे। अधिकांश वक्ताओं को वादविवाद का ठीक पता ही न था। निर्णायक भी पुराने ढंग के थे। यही कारण था कि हमारे प्रतिनिधि संस्कृत में पूर्ण सफलता प्राप्त न कर सके और केवल चन्द्रगुप्त जी को दूसरा इनाम मिल सका यद्यपि गुरुकुल के और केवल गुरुकुल के प्रतिनिधियों के भाषण ही सर्वोत्तम कहे जा सकते थे। सब दर्शकों की अधिकांश जनता हमारे पक्ष में थी और उसे निर्णायकों के निर्णय से असन्तोष था। दोपहर को अंग्रेजी का वादविवाद था। हमारा इसे देखने का भी विचार था। अंग्रेजी का वादविवाद भी बहुत अच्छा था। ऐसी बात मुझे कोई प्रतीत नहीं हुई कि गुरुकुल भी उसमें तय्यारी करके भाग न ले सकता हो। अतः अंग्रेजी बोलने का और उच्चारणों का अभ्यास करना पड़ेगा। विषय की तय्यारी तो १० १५ दिन में हो सकती है पर अंग्रेजी की तय्यारी साल के प्रारम्भ से करनी पड़ेगी।

इसके बाद हमारा चायपीने का प्रोग्राम था। पूज्य मालवीय जी, आचार्य ध्रुव, श्री रामनारायण जी मिश्र तथा प्रो० प्राणनाथ जी आदि से मिलने की बड़ी इच्छा थी पर समयाभाव के कारण हम विचारों को छोड़ कर वापिस आना पड़ा। तांगा आदि तो पहले ही दे दिया था। गुरुकुल आकर हमारा जो स्वागत हुआ व जो अन्य घटनायें हुईं वे सब पाठकों की आँखों देखी होती हैं। मनुष्य के जीवन का महत्व इतना ही है कि वह दूसरे मनुष्य की कुछ सेवा कर सके और उन्हें आनन्द दे सके। यदि कुल की उन्नति के लिये हम कुछ कार्य कर सके तो उसके लिये परम प्रभु का कितना धन्यवाद किया जा सके वह थोड़ा है। हमको बनारस जाने का अवसर देने वाले अधिकारीगण तथा विषय की तय्यारी में सहायता देने वाले उपाध्याय भी धन्यवाद के पात्र हैं। इससे पूर्व कि मैं इस विवरण को समाप्त करूं - एक बात और लिख देना चाहता हूं। हिन्दू विश्वविद्यालय के कुछ विचारशील व्यक्ति

विद्यार्थियों ने हमारे सामने बड़ी योग्यता और उत्साह से उन भावों को रखा था कि हमको इस बात का गर्व है कि प्राचीनता और भारतीय सभ्यता की दृष्टि से हमारा विश्व विद्यालय अन्य विश्व विद्यालयों से आगे है। किन्तु गुरुकुल कांगड़ी एक ऐसा स्थान है जिसके आगे प्राचीनता और भारतीय सभ्यता की दृष्टि से हमें मान और लज्जा के साथ झुकना पड़ता है। हमें इस बात का हार्दिक हर्ष है कि कुछ वर्षों के बाद हिन्दू अपने पर आये हैं अपने तथा गुरुकुल में हम भेद नहीं करते। क्या पाठक इन पंक्तियों के अर्थ को समझ सकते हैं। गुरुकुल के प्रत्येक ब्रह्मचारी और स्नातक के सामने इस गुरुकुल की रक्षा का प्रश्न है। हमारे जीवन की एक यह भी शिक्षा होनी चाहिये कि गुरुकुल किस प्रकार उन्नति कर सकता है। १) मासिक कमानेवालों को भी २ पैसे मासिक गुरुकुल के लिये अलग धर देने चाहियें। इसलिये नहीं कि वही आर्थिक सहायता होगी। वह तो जो होगी सो होगी किन्तु उस कुलमाता की याद बनी रहेगी। जिसकी गोद में हमने अपने जीवन के मधुमय सोलह वर्ष उसकी गोद में बिताये हैं। मेरे सामने तो यही प्रश्न है कि [illegible] यह प्राचीनता और भारतीय सभ्यता की रक्षा करते हुए कोई ऐसा उपाय नहीं निकाला जा सकता कि केवल गुरुकुल की हस्ती को कायम रखे और उसके स्नातक सब प्रकार से संसार में उच्च जीवन बिता सकें। हमारा गुरुकुल यद्यपि हिन्दू विश्व विद्यालय जैसा विशाल और बड़ा नहीं है किन्तु सौन्दर्य की दृष्टि में उससे कम नहीं है यदि उसमें आर्थिक ठीक हो जाय तो। जीवन हमारा कहीं अच्छा है। शिक्षा प्रणाली भी कहीं उत्कृष्ट है। किन्तु शिक्षा में तथा शिक्षा के क्रम में यथोचित परिवर्तन की आवश्यकता है। ज्यूं २ हमारे स्नातकों की संख्या बढ़ती जायगी त्यूं त्यूं उस समस्या का स्वरूप अधिक गम्भीर और दृश्य होता जायगा।

प्रभु करें कि जिस कुलमाता की गोद में जीवन का यह मधुर काल व्यतीत करने का अवसर मिला है वह दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करे और आगे भी उसका नाम न केवल हिन्दू विश्वविद्यालय में अपितु सर्वत्र सम्मान तथा आदर से लिया जाये। कुलमाता की इस मान मर्यादा का बहुत कुछ उत्तर दायित्व कुलपुत्रों के कन्धों पर ही है।

मेरठ में गुरुकुल

[illegible]

इस बार जब गुरुकुल दल मेरठ टूर्नामेंट के लिये विदा हुआ, उस समय कुल का वायुमण्डल बहुत विक्षुब्ध था और इन शब्दों में उसका वर्णन किया जा सकता है कि 'यह वायुमण्डल दल के टूर्नामेंट में शामिल होने के पक्ष में न ही था'। इसका कारण कई रूपों से कहा गया है। एक बहुत बड़ी दलील जो इसके विरोध में दी जाती रही है, यह थी कि दल की तैयारी अभी टूर्नामेंट में जाने के लायक नहीं है। किन्तु हमारा यह दृढ़ विश्वास था कि हमारी तैयारी अच्छी है। प्रस्थान से कम से कम १० दिन पहिले से निरन्तर नियम पूर्वक खेल हो ही रही थी। और आयुर्वेद महाविद्यालय से देहरादून जाने से पूर्व भी ५-६ दिन खेल हुई थी। इन परिस्थितियों में हमें अपने शामिल होने में कोई भी आपत्ति नज़र नहीं आती थी।

यह तो घर का हाल हुआ और उधर बाहर मेरठ की सुनिये।

जब हम लोग मेरठ पहुंचे तो न इन्स्पेक्टर जी के आदमी हमें स्टेशन पर लेने के लिये आये हुये थे। उन्होंने हमें नहीं देखनी से देखा और अलमों ने अपने आपको रोक न सके उन्होंने पूछा आपके 'माथ अनुगामी' Clothe forward तो दिखलाई नहीं पड़ते;

हम लोग सीधे अपने सुपरिचित जैन धर्मशाला में पहुंचा दिये गये। वहां पर इन्स्पेक्टर जी और अन्य आर्य भाइयों ने हमारा बड़े प्रेम से स्वागत किया और हमें प्रोग्राम भी दे दिया।

हमारे पुराने खिलाड़ी अपने पहिले मैच को ही देखकर कुछ चुप से होगये थे। पहिला मैच 'ईस्ट इण्डियन डिविजनल सिगनल्स' से था। यह एक अच्छी व मजबूत टीम थी। इसे अपने साथ पड़ा देखकर पुराने खिलाड़ी खामोश थे, पर

नये रंगरूट विशेषत: श्री बलबीरसिंह, श्री प्रजापति विशेष आशान्वित और उत्सुक हो रहे थे। और जिस प्रकार सहारनपुर में हमारे खिलाड़ियों ने पहले ही आपस में गोल बांट लिये थे कि इतने फलाने के करने हैं और इतने फलाने के, उसी प्रकार उन्होंने भी गोल गिनने शुरू किये। उनकी उत्सुकता देखने लायक थी। आखिर एक मनुष्य ने बताया कि जो टीम आई है, पिछले साल जैसी नहीं, जरा अच्छी तरह खेलना, तभी विजय मिलेगी, अन्यथा नहीं। तो ये उत्साही सज्जन इससे भी कूदने लगे।

खेल आरम्भ होते समय उत्साह ही दृश्य था। पुराने खिलाड़ी स्थिर और निश्चिन्त प्रतीत होते थे पर "उत्साही सज्जन" कुछ तड़पते हुए थे। प्रथम ३० मिनिट तक तो खाली रहे। जिन लोगों ने बाहर के मैदान नहीं देखे होते वे सचमुच पब्लिक का इतना घबरा जाते हैं कि उन्हें सम्हालना कठिन हो जाता है। समयार्ध के बाद श्री प्रजापति ने लिया और इतनी जोर से वापिस आये कि शाबाश देनेवालों को शर्मिन्दा होना पड़ा। उसका कारण पक्ष प्रतिनिधि ने गोल कर लिया।

मेरा कथन तो यही है कि गोल करने के बाद धीरे धीरे आना चाहिए। इससे लाभ हैं - एक तो यह कि जरा दम लेने का समय मिल जाता है और दूसरा जो लोग शाबाशी देना चाहते हैं वे भी अपना उत्साह प्रकट करने का अवसर पा जाते हैं। लेकिन भागने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे खेलते अनभिज्ञ व्यक्ति हों। लोग समझते हैं कि अनाड़ी के हाथ बटेर लगी है।

दूसरा गोल शीघ्र कॉर्नर से हुआ। शुरू शुरू की प्रणाली हमारा दल दाहिने तरफ से ही कॉर्नर लेता है। किन्तु बाहर वालों के लिए यह कुछ नयी बात थी। इसपर जब श्री जगदीश ने गोल किया तो अखबार वालों ने दौड़ कर नाम पूछा और नोट कर लिया।

अब खेल जोर पकड़ गया। वे लोग भी 'रश' (Rush) करने लगे। हमारे सभी खिलाड़ी खूब जवाब दे रहे थे। आखिर प्रजापति ने तीसरा भी गोल कर दिया और अखबार वालों ने उसका भी नोट कर लिया।

खेल समाप्त होने में थोड़ी ही देर थी पर हमने खूब दबा रखा था। लोग कहते कि—

"गुलबुल दल" दूसरे Half time में जोर पकड़ता है। हमलोग भी प्रसन्न होकर लौट आये।

अन्तर हैंच मार्च युनियन से था। यह दल पिछले तीन सालों तक इस टूर्नामेन्ट को जीतता आ रहा है अतः हमलोगों पर इसकी नई धाक थी। स्व. अजीज कि पुल ने हमारे दल के उत्साह श्री जगदीश को बुलाकर 20) इनाम के रखे और कहा कि अजयदल टीम को जीतने पर ये आपको ही होंगे।

24 ता. को हमारा मैच प्रारम्भ हुआ आज खेल से पूर्व खिलाड़ी लोग बार २ लघुशंका जाते थे। प्रारम्भ में हमारे खिलाड़ी बिल्कुल हतोत्साह प्रतीत हुये और थोड़ी देर में उन्होंने एक गोल हम पर चढ़ा भी दिया। उसका हमारे गोलरक्षक महोदय असावधान न जाने भी एक अजीब करतब दिखाया, न जाने उन्हें क्या सूझी कि जब गेन्द गोले में आयी तो वे लड़खड़ा प्रणाम करने पर गेंद देखी उनकी शक्ति से अत्यधिक प्रसन्न हो सीधी आयी और उनके पांव के बीच से घर की दिशा पर एकदम बाद बेग से लगभग आधी गोल में असफल होगयी। उनकी तपस्या सफल होगयी। लोगों ने तालियां बजाकर हर्षध्वनि प्रकट की पर हमारे दिल दबे नहीं। प्रजापति जी में आज वह जोश नहीं था पर प्राणजी में एक पर एक नया जोश था। हम लोग लगे रहे पर कुछ न हुआ। समयार्ध तक हम हारे हुये। पर समयार्ध के बाद पं. विश्वनाथ जी के जोश ने हमारे अन्दर नई जान भर दी। खेल शुरू होते न होते श्री प्राणजी ने गेन्द उनके फाटक पे जा टकराई। हम लोगों के दिल बल्लियों उछल गये। अब हमारे श्री प्रजापति की बेहोशी भी टूटी और मजेदार ढंग से आरम्भ हुई। किसी तरह नीचा प्राप्त कर सकते २ आखिर उन्होंने किसी तरह इसका गोल लाकर दे दिया। इस गोल का श्रेय प्रजापति जी को नहीं दिया जा सकता उसका श्रेय श्री विश्वनाथ जी को दिया जाना चाहिये। उन्हों अपने गोल के अन्दर जाकर २ गेन्द बचाकर ठीक आगे आगे लाकर प्रजापति जी को दी। इस पर उनकी जगह भी Left in थी यदि फिर

धीरे २ खेल समाप्त हुयी। हमारे खिलाड़ी भाई अपना लटकता मुंह लेकर लौट रहे थे। सब को पीपे सुनायी दे रहे थे। सभी चुपचाप चल रहे थे। लेकिन आगा कर कालेज बन्धुओं के व्यंग्य बाण देने लगे। हम चुप थे, निराश थे इन सब कठिनाइयों से इतने घबड़ाये हुए नहीं थे जितने पीपों की आवाज से घबराये हुये थे।

आखिर वापिस लौट आये। हमारा तांगा आया इससे पूर्व दो तांगे आ चुके थे पर सब तरफ सन्नाटा था। हमने सामान उठाया और चुपचाप कमरे में बन्द हो गये। कुछ ही पलों के बाद चारों तरफ पीपों की मधुर ध्वनि सुनायी देने लगी। गरिमा के कमरे को लोगों ने घेर लिया। खूब पीपे बजे। सारा गुरुकुल पीपों से गूंज उठा।

महाविद्यालय के साथ विद्यालय के छोटे भाइयों ने भी हमारा स्वागत पीपों से किया परन्तु मेरा विश्वास है कि हमें इस हार के कारण अपमान कराई हाथ हो। पर भी मुझे विश्वास है कि एक दिन जरूर हमारी टीम मैच को जीतेगी

श्री [illegible]

२१ दिसम्बर को बड़ी [illegible] के आर टूर्नामेन्ट शुरू हुआ। किसी को इस बात की पूर्ण आशा न थी कि इसबार टूर्नामेन्ट सफलता से हो भी जायगा, क्योंकि पूज्य आचार्य जी इसके पूर्ण विरोध में थे। जैसा भी टूर्नामेन्ट हुआ उसका परिणाम आपके सामने है। उस पर हम इस समय कुछ न कहेंगे। सारे टूर्नामेन्ट का इन्तजाम कैसा रहा और किस तरह से बाहर से आने वाली पार्टियों के रहने और खाने का इन्तजाम किया गया, उसमें क्या त्रुटियाँ थीं यह बताना हमारे इस लेख का उद्देश्य नहीं है, पर फिर भी इन सब छोटे २ शीर्षकों पर अन्त में कुछ कहने की कोशिश की जाएगी।

पहिला मैच हरिद्वार A और गुरुकुल मैट्रिक कॉलेज का हुआ। उसमें दोनों बराबर रहे। आगे दिन २२ को तीन मैच हुये। पहिला पुलिस टीम और गुरुकुल युनिवर्सिटी A का मैच हुआ। १२ गोल से २ जीत गई। दूसरा सहारनपुर और U.S.A. का मैच हुआ। सहारनपुर २ गोल से जीत गया। खेल से पहिले तक सहारनपुर वालों को यह मालूम नहीं था कि U.S.A. क्या बला है। जब गुरुकुल C अपने पहनावे U.S.A. के रूप में निकली तो खेल शुरू होने पर क्षणभर के लिये ऐसा मालूम पड़ा कि सहारनपुर वाले भी कुछ असमंजस में हैं कि यह कौन टीम है; 'C' टीम भी खूब खेली और केवल दो गोलों से सहारनपुर वाले हरा सके।

तीसरा फिर वही २१ का मैच हरिद्वार A और गुरुकुल मैट्रिक कॉलेज का हुआ। उसमें गुरुकुल एक गोल से हार गया। पर गुरुकुल की टीम ने रैफ़री के निर्णय से असन्तुष्ट हो कमेटी के सामने पुनः खेल के लिये प्रार्थनापत्र दिया।

यद्यपि ग. वसन्तलाल जो कि उस टीम में खेल रहे थे, उन्होंने कहा

भी था कि तुम प्रार्थनापत्र मत दो क्योंकि इसका कुछ फायदा न होगा" तुम्हारे ५) भी खराब जायेंगे, पर तो भी उन्होंने प्रार्थनापत्र दिया और उनके भाग्य से कहिये या कमेटी की बुद्धिमता कहिये पास हो गया। डा. साहिब जानते थे कि ऐसी २ स्वर वालों पर यदि मैच दुबारा होने लगे तो शायद सारा टूर्नामेन्ट ही दुबारा हो जाय। कभी भी कमेटी इन बातों पर ध्यान नहीं देती। यदि देती है तो उसकी ही कमजोरी सिद्ध होती है, माना उसने इनका प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया, इससे उसकी ही त्रुटि जाहिर होती है, क्योंकि रैफ्री भी तो उसी के बनाये हुये हैं, एक तो रैफ्री की हतक, दूसरी अपनी कमजोरी का स्पष्टीकरण।

एक बार हुआ सो हुआ पर वही बात हम मुजफ्फर नगर और गुरुकुल B. के मैच के सम्बन्ध में भी देखते हैं। मुजफ्फरनगर ने भी हारने पर पुन खेलने के लिये प्रार्थनापत्र दिया और उनकी बात मान ली गयी। कहां जाय- यह कहते सुना गया है कि जब टूर्नामेन्ट शुरू हुआ है इसलिये ऐसी २ चीजें करनी ही पड़ती हैं, जिससे बाहर की पार्टी सन्तुष्ट रहें। पर यह उक्ति इस पक्ष को सिद्ध करने के न जाय विपक्ष को सिद्ध करती है। यदि टूर्नामेन्ट के शुरु से ही सख्ती से सब नियमों का ठीक २ पालन न किया गया तो उसकी आगे क्या हालत हो जायगी इसका अनुमान आप स्वयं ही लगा सकते हैं।

यहां प्रसंगवश कमेटी पर हम इतना कह गये हैं। अब हम फिर अपने प्रकृत विषय पर आते हैं।

२३ को फिर वही स्थगित मैच हरिद्वार 'ए' और [illegible] मै. कॉ. का होना था, पर हरिद्वार 'ए' कमेटी के निर्णय के विरोध में क्रीड़ाक्षेत्र में ही नहीं आयी। इस तरह वह हारी समझी गई। दूसरा मैच मुजफ्फरनगर और गुरुकुल B. का हुआ जिसमें गुरुकुल B जीत गयी। पर उन्होंने प्रार्थनापत्र दिया और उनका मैच आठ दिन के लिये फिर रक्खा गया।

२३ की शाम से ही वर्षा के चिन्ह दिखाई देने लगे थे, अन्त में उस दिन मैच के समय वर्षा हुई भी।

पर अगले दिन तो सारे दिन बारिश होती रही। सारा क्रीड़ाक्षेत्र पानी से भर गया। उस दिन कोई मैच न हो सका और खेलने वाली पार्टी को रख-ना दे दी गयी। परन्तु अब क्रीड़ाक्षेत्र के एक हिस्से में पानी भर गया था, अत दोनो क्रीड़ाक्षेत्रों को मिला कर नया ही क्रीड़ाक्षेत्र बनाया गया। बीच २ मे वर्षा हो रही थी परन्तु क्रीड़ामन्त्री जी ने बड़े उत्साह से अपने कुछ सहयोगियों को लेकर सुबह ६ $\frac{1}{2}$ बजे से लग कर नये ग्राउन्ड को पूरी तरह ठीक कर तय्यार कर दिया और ९ बजे सुबह टूर्नामेन्ट प्रारम्भ हुआ। सुबह दो मैच हुये। एक गुरुकुल B और मुज़फ्फरनगर का हुआ, जिसमें फिर गुरुकुल B. जीत गई। और दूसरा सिन्हा क्लब और गुरुकुल ब्रह्मचर्याश्रम का मैच हुआ, जिसमें सिन्हा क्लब जीत गई। ब्रह्मचर्याश्रम वालों का खेल आशातीत उत्तम रहा।

शाम को ४ बजे फिर मैच शुरु हुये। पहिला मैच सिन्हाक्लब और गु. कु. 'अ' का हुआ। यद्यपि सिन्हाक्लब ने अपने कई खिलाड़ी बदल रक्खे थे और वे खिलाड़ी उस ने U.C. के थे जो कि पहले गुरुकुल को ६ गोल से हरा चुके हैं, 'A' पार्टी ६ गोलों से जीती। दूसरा मैच सहारनपुर का और गुरुकुल B. का था। वास्तव में टूर्नामेन्ट के अन्दर २ मैच यहीं से शुरु होते हैं। अभी तक कोई ऐसा अच्छा और मजेदार सामुख्य न हुआ था। खेल बहुत जुड़ा हुआ था। B ने पहिले एक गोल चढ़ा दिया पर अन्तिम दो मिनटों मे वह उतर गया। इस तरह उनका मैच स्थगित रहा।

अगले दिन २६ को यही एक मैच हुआ। सहारनपुर टीम को आशा थी कि वह अब की बार शील्ड ले जावेगी, इसलिये जब प्रथम मैच में उस पर B ने गोल कर दिया था तो उनका जोश बहुत बढ़ गया था, क्योंकि 'बी' से यदि वे हार कर जाते तो उनकी बहुत ही बदनामी थी। इसलिये दूसरा मैच भी बहुत अच्छा हुआ। बड़ी मुश्किल से उन्होंने एक गोल B पर चढ़ाया। 'बी' ने उनका बड़ा अच्छा मुकाबिला किया। यद्यपि B उनसे [illegible] टीम थी, पर

तो भी उस पर वे एक गोल से ज्यादा न चढ़ा सके। इसमें बहुत कुछ श्रेय गुरुकुल B के बैक और गोलकीपर को दिया जा सकता है। [illegible] गोलकीपर श्री विजय बहुत अच्छा खेले और इन्होंने कई बार दर्शकों से हर्षध्वनि ली। इस प्रकार इन्होंने वह मुकाबिला किया कि लोग वाह २ कर उठे।

सहारनपुर टीम ही इस टूर्नामेन्ट में बाहर की सब टीमों से अच्छी थी अत उसकी खेल के विषय में यहाँ कुछ कह देना आवश्यक है। सहारनपुर के दो तीन खिलाड़ी Centreforward, Back, Left out बहुत अच्छे थे। Centre forward का passing बहुत कमाल का था। Left out का नाम ही हिरना रक्खा हुआ था और वह था भी इसी नाम के अनुरूप। वैसे तो सारी टीम ही अच्छी थी पर इसबार Shield जीतने के विश्वास के कारण वह और भी अच्छा खेल रही थी।

२८ को final हुआ। फाइनल में गुरुकुल 'A' और सहारनपुर टीम पहुँची थी। २८ की पहिली रात को सहारनपुर वालों ने कहा कि यदि रैफ्री न बदले गये तो हम फाइनल में न खेलेंगे और आने के लिये बिस्तरे बांध लिये। परन्तु पीछे से समझाने पर उन्होंने मान लिया कि वे खेलेंगे। एक रैफ्री सहारनपुर के मा. पृथ्वीप्रसाद जी और दूसरे सर्दार हजारासिंह जी रक्खे गये।

फाइनल के दिन बड़ी रौनक थी, और दिनों की अपेक्षा दर्शक भी ज्यादा थे और वैसे भी इन्तजाम खूब ठीक था। सहारनपुर के भाग्य का आज निर्णय था। बाहर के आदमी सहारनपुर की तरफ थे। हम में से भी बहुत सारे उनके ही पक्ष में थे। हमारा कहना था कि अच्छा हो शील्ड बाहर चली जावे उससे टूर्नामेन्ट की ज्यादा प्रसिद्धि होगी। खेल शुरू हुआ। थोड़ी देर बाद A ने एक गोल चढ़ा दिया। बिगुल बजने लगे गुरुकुल भाइयों की हर्षध्वनि तथा तालियों की गड़गड़ाहट ने उसका जवाब दिया। परन्तु अभी बिगुलों का शब्द, तालियों की गड़गड़ाहट खतम भी नहीं हुये थे कि हिरना ने एक दम से गोल उतार दिया। इस पर दर्शकों ने अपूर्व उल्लास प्रकट किया। इस समय खेल बड़ी तुली हुई थी। आदमी सहारनपुर का जोश बढ़ा रहे थे। इनकी खेल को देख कर हम कह सकते हैं कि टीम हमारी A

के मुकाबिले में की ही थी, पर हाफ टाइम के बाद अचानक एक गोल इन पर चढ़ गया। बड़ी कोशिश करने पर भी वह इनसे न उतरा। आखिर को भाग्य भी कोई चीज़ है, उसने इनका साथ न दिया। इनके जीतने में किसी प्रकार भी हमें सन्देह न था, पर भाग्य को यह मंजूर न था। इस तरह शील्ड गुरुकुल में ही रही। एक बात में हम यहाँ अवश्य कह देना चाहते हैं कि 'हिप हिप हुर्रे' का रिवाज एक दम उड़ा दिया जाना चाहिये। जब कि इसके मुकाबिले में हमारे पास एक वाक्य है तो हम क्यों उसे छोड़कर विदेशी चीज़ का आश्रय लें।

अन्त में हम टूर्नामेन्ट के प्रबन्ध और उसके प्रबन्धक क्रीड़ामन्त्री के विषय में कुछ कहना चाहते हैं। दैवीय विपत्तियों के तथा अन्य बाधाओं के होते हुये भी क्रीड़ामन्त्री जी ने खूब अच्छा प्रबन्ध कर दिया। पहले एक दो दिन तो प्रबन्ध ठीक नहीं रहा पर पीछे से ठीक हो गया। पर हमारा ख्याल है कि इसे आदर्श प्रबन्ध नहीं कहा जा सकता। हर एक काम में देरी ज़रूर होती थी।

हमारी समझ में क्रीड़ामन्त्री अधिक इसका मुख्य प्रबन्धक है, उसे जहाँ तक हो सके खेल से अलग रहना चाहिये, क्योंकि प्रबन्ध कार्य ही ऐसा है। यह तभी स्पष्ट हो सकता है जब कि अन्य बातों से ध्यान हटा इसे किया जावे। पर अबकी मन्त्री जी मंत्री तो थे ही साथ २ 'A' के लीडर भी थे, रैफ़री भी थे। कुछ ने इस पर ऑब्जेक्शन भी किया था।

रैफ़री का प्रबन्ध भी कुछ ऐसा ही था। जहाँ तक हो सके बाहर के रैफ़री ही बुलाने चाहियें। इससे किसी को टूर्नामेन्ट की बुराई करने का मौका नहीं मिल सकता। यदि एक रैफ़री भी बाहर से बुला लिया जावे तो काम चल सकता है। खर्च की बात तो यह है कि यदि चाय पार्टी और नारंगी में बीस खर्च न कर इधर थोड़ा खर्च कर दिया जाता तो अच्छा होता। इस दिशा में अधिकारियों का ध्यान भी बहुत खिंचा है और अगली बार से यह त्रुटि दूर करने की पूरी कोशिश करने का वचन और आश्वासन दिया है।

गुरुकुल - समाचार

ऋतु -

शरद् ऋतु का चारों तरफ साम्राज्य है। प्रातःकाल ठण्डी हवा के थपेड़ों के डर से बाहिर निकलने तक को मन नहीं चाहता। कुछ दिनों की वारिश ने तो सर्दी को और भी क्रूर और प्रबल बना दिया है। इस बार और सालों की अपेक्षा सर्दी ज्यादा पड़ रही है।

स्वास्थ्य -

सर्दियों में तो स्वास्थ्य अच्छा ही रहा करता है क्योंकि शरीर के बढ़ने की मौसम तो यही है। इसी कारण इस भी महाविद्यालय का विद्यार्थी बीमार नहीं है, न गत मासों कोई बीमार पड़ा। इन से पहले हुए भी हों तो ऐसी कोई बात नहीं। हां, चोटवालों की संख्या यद्यपि अवश्य ज्यादा रही पर अब उनसे भी हस्पताल खाली है।

आसपास पंचपुरी में प्लेग फैलने के कारण उसके यहां फैलने की संभावना से सबको टीके लगा दिए और चारों तरफ की सफाई पर ध्यान दि[illegible] गया इससे अब यहां प्लेग के फैलने की ~~[illegible]~~ न के बराबर संभावना है यद्यपि प्लेग अभी चारों तरफ कम नहीं हुआ है, कोई कुछ वृद्धि पर ही है।

छोटे में से तीसरी पांचवीं के कुछ विद्यार्थियों को खसरा होगया था अतः सब छोटे विद्यार्थियों को टीके लगवा दिए गए। वह फैलने न पाया। जिनको हुआ भी था अच्छा। अच्छा होगया है। इस समय छोटे विद्यार्थी भी आराम सब चोट वाले हैं।

इस सुप्रबन्ध के कारण आजकल

साहब का उपयोग सराहनीय है। रोग की संभावना होते ही उसका उपचार किया जाता है।

एक बात पर हम डा० साहब का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं कि छोटे ब्रह्मचारियों को फोड़े फुन्सी हो जाते हैं और वे बाद उन्हीं ही को होते हैं अतः इस पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि ये फोड़े न हो सकें। इसका कुछ विशेष इन्तजाम होना चाहिए।

सभाएं —

इस सत्र सभाओं के साप्ताहिक अधिवेशन नियम पूर्वक नहीं हुए। बस, नए उपमंत्री और मंत्री को चुनाव बाद सभाएं शान्त पड़ गईं। संस्कृतोत्साहिनी के मंत्री ब्र. वासुदेवजी और उपमंत्री भद्रसेन जी चुने गए। इसी प्रकार वाग्वर्धिनी के मंत्री, उपमंत्री महा. ब्र. सत्यकाम जी और ब्र. बलदेवजी इ० चुने गए। कॉलिज यूनियन के मंत्री ब्र. भारतभूषण जी चुने गए हैं।

कॉलिज की इन सभाओं के इस सत्र में न होने का कारण एक यह भी है इस सत्र में वार्षिक परीक्षा के पास आने कारण विद्यार्थी पढ़ाई में ज्यादा ध्यान देने लगते हैं। दूसरा यह है कि इसी सत्र में पास पास कई त्यौहार भी आ जाते हैं। पर हम समझते हैं कि यदि मंत्री उत्साही हो, तो दशा कुछ सुधर सकती है। इसका सिर्फ यही उपाय है कि मंत्री का चुनाव इसी में न यत्न किया जाए। यह काम काफी गंभीरता का है पर इस तरफ ध्यान नहीं दिया जाता।

कोई अन्य विशेष बात सभाओं के बारे में कहने की नहीं।

माननीय अभ्यागत —

इस सत्र कई मान्य अभ्यागत हमारे कुल में पधारे। एक, डेढ़ महीना पहिले Mr. Professor of Theology, Theological College Java. यहां आए थे। वे छः महीने के लिए हिन्दुस्तान में हिन्दुधर्म की स्टडी के लिए आए हुए थे। यहां पर उनका 'जावा भूत वर्तमान और भविष्य (Java Past and Present) इस विषय पर लेक्चर हुआ।

इसके एक महीने बाद ही दो तीन मान्य अतिथि यहां पर पधारे। उनमें से एक S. Nihal Singh थे। आप का यहां कोई व्याख्यान न हुआ क्योंकि आपको किसी आवश्यक कार्य से कहीं जाना था। आपने केवल गुरुकुल विश्वविद्यालय के भिन्न भिन्न भागों को देखा ही और वापिस लौट गए।

दूसरे मान्य दर्शक चावला थे। आप प्रधान हिन्दुस्तानी बोर्ड जो कि करांची से लाहौर गए थे। आप से व्याख्यान के लिए कहा पर आप इस चीज के लिए तैयार होकर न आए थे केवल आपका विद्यार्थियों से हवाई जहाज सम्बन्धी बातों पर प्रश्नोत्तर ही हुआ।

तीसरे मान्य अतिथि विजयराघवाचार्य थे। विद्यार्थियों ने जब 'अर्जुन' में पढ़ा कि आप दो तीन दिन के लिए हरिद्वार में आए हुए हैं तो आपको गुरुकुल में पधारने के लिए प्रार्थना की गई आपने उसे स्वीकार किया और गुरुकुल में आप को पधारे। आपका कोई सार्वजनिक व्याख्यान न हुआ सिर्फ आपने कुछ मिनट गुरुकुल और श्रद्धानन्द के विषय में कहे।

विशेष व्याख्यानों की संख्या इस सत्र साधारण रही है। साहित्य परिषद् की तरफ से पं. जयचन्द्र जी विद्यालंकार के दो तीन व्याख्यान हुए। एक दो व्याख्यान में देवराज और 'ज्योति' के इसी प्रकार की तरफ से हुए। इसी प्रकार वाग्वर्धिनी ने भी ४-५ व्याख्यान करवाए। एक अभी हाल में बृहस्पतिवार २४ दि. को प्रो. [illegible] शरण जी प्रो हिस्ट्री हिन्दु यूनिवर्सिटी का व्याख्यान "मध्यकालीन भारत और वास्तुकला।" इस विषय पर हुआ। आपने मोटी तौर से वास्तुकला के विकास पर प्रकाश डाला और बताया कि इसका कितना [illegible] सम्बन्ध तत्कालीन समाज से था।